हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त हैं ।

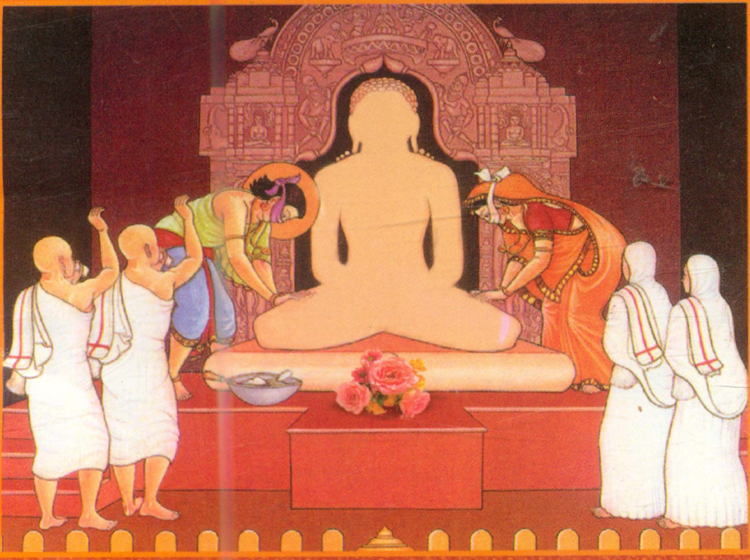

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी म.सा.

हाँ !
मूर्तिपूजा
शास्त्रोक्त है ।

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी म.सा.

पुस्तक परिचय

नाम	:	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है ।
लेखक	:	मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी म.सा.
प्रकाशक	:	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला मु.फलोदी (मारवाड़)
पुस्तक क्रमांक	:	१५३
प्रथमाकृति	:	वीर सं.२४६२, विक्रम सं.१९९२
नकल	:	१०००
द्वितीयाकृति	:	वीर सं.२५४१, विक्रम सं.२०७१
नकल	:	१०००
मूल्य	:	रु.२०/-

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी म.सा.

प्रकाशकीय

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय साहित्य प्रचारक इतिहास प्रेमी मुनि श्री श्री १००८ श्री श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज साहेब हमारे मारवाड़ के एक चमकते सितारे हैं । आपश्रीने मारवाड़ की वीरभूमि पर अवतार लेकर जननी जन्मभूमि की सेवा करने में अथाग परिश्रम किया है । कितनेक लोग आपत समय यह कह उठते हैं कि हम अकेले क्या करें ? पर हमारे मरुधर केशरी मुनि श्री अकेले होते हुए और अनेक विपक्षियों के बीच में निडरतापूर्वक क्या क्या काम कर बतलाये उनको सुनते ही मनुष्य चकित हो जाते हैं । यह तो आप जानते ही है कि जैन मुनियों को पैदल भ्रमण करना और क्रिया कल्प से समय बहुत कम मिलता है । इस बचित समय में छोटे बड़े १६२ ग्रंथ हाथों से लिखना, प्रूफ संशोधन करनार, आये हुये प्रश्नों का उत्तर

लिखना, काम पड़ने पर शास्त्रार्थ के लिये तैयार रहना, हंमेशां व्याख्यान देना, कई मन्दिरों की आशातना मिटा के पुनः प्रतिष्ठा करवाना, इतना ही नहीं पर आप समय २ तीर्थों की यात्रा और अन्य भव्यों के यात्रार्थ संघ निकलवाना आदि समाज और धर्म कार्य आपश्रीने बडी योग्यता और उत्साहपूर्वक किये और करवाये । फिर भी आपके सहायक कौन ? जहाँ तन धन की प्रचूरता से सहायता मिलती है वहाँ कार्य करना आसानी है पर मारवाड़ जैसे शुष्क प्रदेश में तो इन दोनों बातों का प्रायः अभाव सा ही है । तथापि आत्मार्पण करनेवाले पुरुषार्थी महात्माओं के लिए सब कुछ बन सकता है ।

मुनिश्री की वृद्धावस्था - शरीर शिथलता होने पर भी आपका प्रकाशन कार्य आज पर्यन्त चालु ही है । हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं और चाहते हैं कि एसे परोपकारी महात्मा चिरायु हों और हम भूले भटकों को सद्मार्ग की राह बतला कर मरुभूमि का उद्धार करते रहें । अस्तुः

आपश्री का चरण किंकर

दफ्तरी जवाहरलाल जैन

किञ्चित वक्तव्य

आज सगंठन के युग में प्रत्येक राष्ट्र, देश, समाज और व्यक्ति एक दूसरे से हाथ से हाथ मिलाकर काम करना लाभप्रद समझता है । आर्य-समाजी जैसे मूर्ति के कट्टर शत्रु भी अब समझ गये कि हमारी खण्डन प्रवृत्ति से हमें लाभ के वजाय हानि उठानी पड़ती है । अत एव उन्होंने भी अपनी चाल बदल दी । मूर्ति के विषय मध्यस्थता धारण कर सनातनियों से हाथ मिलाया कारण ऐसा करने से ही वे उन्नति के मैदान में आगे बढ सकते है ।

इसी भाँति हमारे समाज में भी मूर्ति मानने या नहीं

माननें का करीबन ४५० वर्षों से झगडा चल रहा है और इस विषय में खंडन मंडन की लाखों पुस्तकें छप गई, जिससे शांति के बदले ग्रामोग्राम क्लेश, कुसम्प और अशान्ति फैली, संघ शक्ति और न्याति बन्धन छिन्न भिन्न हुआ, तप तेज फीका पडा और दूसरों को भेद देखने का अच्छा मौका मिला । जो लोग हमारे आधीन थे वे ही आज हमको हर प्रकार से दबा रहे हैं यह सब घर की फूट का ही कटु फल है ।

जमाने ने अपना प्रभाव डाला । उभय पक्ष ने यह विचार कर लिया के जिस विषय का हमारे आपस में विचार भेद है उसको एक किनारे रख दें और जिस बात में हम दोनों पक्ष सहमत है उसका प्रचार करने में हम एक बन जावें । इसी ध्येय को लक्ष्य में रख उभय पक्ष के मुनियोंने सप्रेम एक पाट पर बैठ के व्याख्यान देकर जनता को अपनी वात्सल्यता का परिचय कराया । इस प्रवृत्ति का प्रभाव उभय पक्ष के उपासकों पर भी कम न हुआ । उन लोगों की अशान्ति मिटकर आपस में एक्यता बढ़ने लगी और भविष्य में कई

आशाओं के लिये किल्ले बांधे जाने लगे ।

फिर भी अफसोस इस बात का है कि हमारी समाज में अभी ऐसे लोगों का भी अभाव नहीं है कि वे इस सगंठन के युग में भी अठारवीं शताब्दी के स्वप्न देख रहे हैं । जिसमें पहला नंबर तो है स्थानकवासी मुनि शोभागचन्दजी (संतवलजी)का आपने हाल ही में जैन प्रकाश पत्र में 'धर्मप्राण लोकाशाह' नाम की लेखमाला की ओट में शासन रक्षक धर्मधुरंधर पूर्वाचार्यों की और मूर्ति की भर पेट निन्दा कर शान्त हुवे समाज में क्लेश के बीज आरोपण किए है । दूसरा नंबर है स्थानकवासी पू. रत्नचन्दजी के टोला के साधु सुजानमलजी का कि आपके मौलिक गुण (।) गत वर्ष पीपाड़ रोड़ पर मिटिंग के अन्दर आपके ही टोला के साधु लाभचंदजीने प्रकाशित किया था । तीसरा नंबर है स्था. पू.रुघनाथजी के टोला के साधु मिश्रीलालजी का आप लघुवय में ही स्वच्छन्दी हो मूर्ति की निन्दा कर शान्त समाज में क्लेश फेलाकर ठीक नामवरी हांसल की कि पूज्य

जयमलजी, रुघनाथजी, रतनचंदजी आदि साधुओं ने भी नहीं की थी । हाल ही में आपने 'क्या मूर्ति पूजा शास्त्रोक्त है' नामक छोटा सा ट्रेक्ट मुद्रित करवा के वित्तीर्ण किया है उसमें न तो कोई प्रमाणिक बात है और न आपकी किल दृष्टि से निहार रहे हैं इसको मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं है । आपना बीलाडा में मूर्ति की निन्दा की पर जब मूर्तिपूजक सामने आये तो वहां से पलायन ही करना पडा यह आपकी विद्वत्ता का नमूना है ऐसे व्यक्ति के लिये कुछ लिखना मानो उसको उत्तेजना देना है ।

जैन समाज में विद्वान लेखकों का अभाव नहीं है । मिथ्या कुतर्को और कुयुक्तियों का युक्ति और प्रमाण द्वारा प्रतिकार करनेवालों की भी कमी नहीं है, पर इस युग में खण्डन मण्डनात्मक साहित्य प्रचार करने में क्लेश कुसम्प और अशान्ति के सिवाय कोई भी लाभ नहीं दीखता है तथापि भद्रिक जनता ऐसी कुतर्को को पढकर सद्धर्म से पतित न बनजाय एवं उनकी रक्षा के लिये बहुत सज्जनों की आग्रह

होने से इच्छा के न होते हुए भी 'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास' लिखने के कार्य से दो दिन का समय निकाल मुझे यह 'हाँ मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है' किताब लिखनी पडी है, पाठकवर्ग इसको ध्यानपूर्वक पढकर जो वीतरादग देव की द्रव्य व भावपूजा करना जैनियों का परम इष्ट है उसकी आराधना कर मोक्ष के अधिकारी बनेंगे तो इस कार्य में मेरा समय और शक्ति का व्यय हुआ है । उसको सफळ समझूंगा इत्यालम् ।

ता.२१-५-३५ मुनि ज्ञानसुन्दर

जोधपुर

प्रश्नानुक्रमणिका

१ क्या जैन सूत्रो में मूर्तिपूजा का उल्लेख है ?

२ सूत्रों को आप मूर्ति कैंसे कहते हैं ?

३ मूर्ति को तो आप वन्दन, पूजन करते हो पर आपको सूत्रों का वन्दन पूजन करते नहीं देखा ?

४ हम लोग तो सूत्रों का वन्दन पूजन नहीं करते है ।

५ महावीर तो एक ही तीर्थंकर हुए हैं पर आपने (मूर्तिपूजकों ने) तो ग्राम ग्राम में मूर्तियां स्थापन कर अनेक महावीर कर दिये हैं ।

६ कोई तीर्थंकर किसी तीर्थंकर से नहीं मिलते है पर आपने तो एक ही मन्दिर में चोबीसों तीर्थंकरो को बैठा दिया।

७ सूत्रों में तीन चौबीसी का नाम मात्र लिखा है स्थापना कहां है ?

८ सूत्रों के पढने से ज्ञान होता है । क्यां मूर्ति के देखने से भी ज्ञान होता है ?

९ आप जिनप्रतिमा को जिन-सारखी कहते हो क्या यह मिथ्या नहीं है ?

१० यदि मूर्ति जिन सारखी है तो उसमें कितनें अतिशय हैं ?

११ यदि जिनप्रतिमा जिनसारखी है तो फिर उस पर पशु पक्षी वीटें क्यों कर देते हैं ? उनको अर्पण किया हुआ नैवेद्य आदि पदार्थ मूषक मार्जार क्यों ले जाते है ? तथा उन्हें दुष्ट लोग हड्डियां की माला क्यों पहना देते हैं ? उनके शरीर पर से आभूषण आदि चोर क्यों ले जाते हैं, एवं मुसलमान लोगों ने अनेक मन्दिर मूर्तियां तोड कैसे डाली ? इत्यादि ।

१२ प्रतिमा पूजने से ही मोक्ष होती हो ता फिर तप, संयम आदि कष्ट क्रिया की क्या जरुरत है ?

१३ यदि मूर्तियां वीतराग की हैं और वीतराग तो त्यागी थे फिर उनकी मूर्तियों को भूषणादि से अलंकृत कर उन्हें भोगी क्यों, बनाया जाता है ?

१४ मन्दिरों में अधिष्ठायक देवों के होते हुए भी चोरियाँ

क्यों होती हैं ?

१५ जो लोग यह कहते हैं कि 'पाछा क्यों आया मुक्ति जाय के जिनराज प्रभुजी' इसका आप क्या उत्तर देते हैं ?

१६ यदि ये मूर्तियाँ सिद्धों की हैं तो इन पर कच्चा पानी क्यों डालते हो ?

१७ कई लोग कहते हैं कि 'मुक्ति नहीं मिलसी प्रतिमा पूजियां, क्यों झोड मचावो ?' इसके उत्तर में आपका क्या परिहार है ।

१८ प्रतिमा पूजकर कोई मुक्त हुआ है ?

१९ जब तो जो मोक्ष का अभिलाषी (मुमुक्षु) हो उसे जरुर मूर्तिपूजन करना चाहिये ।

२० देवताओ में जाकर मूर्ति पूजन करना पडेगा ही, इसका आपके पास क्या प्रमाण है ?

२१ कई नहीं करते हैं कि 'परचो नहि पूरे पार्श्वनाथजी सब झूठी बाताँ ।'

२२ सूत्रो में चार निक्षेप बतलाए जिस में एक भाव

निक्षेप ही वन्दनीय है ।

२३ मूर्ति जड है उसको पूजने से क्या लाभ ?

२४ पांच महाव्रत की पच्चीस भावना और श्रावक के १६ अतिचार बतलाये हैं । पर मूर्ति की भावना या अतिचार को कहीं भी नहीं कहा इसका कारण क्या है ?

२५ तीन ज्ञान (मति, श्रुति और अवधिज्ञान) संयुक्त तीर्थंकर गृहवास में थे, उस समय भी किसी व्रतधारी साधु श्रावकने वन्दन नहीं किया, तो अब जड मूर्ति को कैसे वन्दन करें ?

२६ मूर्ति में गुण स्थान कितना पावे ?

२७ श्रावक के १२ व्रत है मूर्तिपूजा किस व्रत में है ?

२८ पत्थर की गाय की पूजा करें तो क्या वह दूध दे सकती ? यदि नहीं तो फिर पाषाणमूर्ति कैसे मोक्ष दे सकती है ?

२९ क्या पत्थर का सिंह प्राणियों को मार सकता ?

३० एक विधवा औरत अपने मृत पति का फोटु पास में रखके प्रार्थना करे कि स्वामिन् मुझे सहवास का

आनंद दो, तो क्या फोटु आनंद दे सकता है ?

३१ जब आप मूर्ति को पूजते हो तब मूर्ति के बनाने वाले को क्यों नहीं पूजते ?

३२ मूर्ति सिलावट के यहां रहती है तब तक आप उसे नहीं पूजते और मन्दिर में प्रतिष्ठित होने के बाद उसे पूजते हो इसका क्या हेतु है ?

३३ सिलावट के घर पर रही नई मूर्ति की आप आशातना नहीं टालते और मन्दिर में आने पर उसकी आशातना टालते हो । इसका क्या कारण है ?

३४ पाषाण मूर्ति तो एकेन्द्रिय होती है उसकी, पंचेन्द्रिय मनुष्य पूजन करके क्या लाभ उठा सकते हैं ?

३५ मंदिर तो बारहवर्षी दुष्काल में बने हैं, अतः यह प्रवृत्ति नई है ?

३६ यह भी सुना जाता है कि मंदिर मार्गियों ने मंदिरों में धामधूम और आरम्भ बहुत बढा दिया, इस हालत में हम लोगों ने मंदिरों को बिलकुल छोड दिया ?

३७ यदि मंदिर, मूर्ति, शास्त्र एवं इतिहास प्रमाणों से

सिद्ध है फिर स्थानकवासी खण्डन क्यों करते हैं ? क्या इतने बडे समुदाय में कोई आत्मार्थी नहीं है कि जो उत्सूत्र भाषण कर वज्रपाप का भागी बनता है ?

३८ स्थानकवासी और तेरहपन्थियों को आपने समान कैसे कह दिया कारण तेरहपन्थियों का मत तो निर्दय एवं निकृष्ट है कि वे जीव बचाने में या उनके साधुओं के सिवाय किसी को भी दान देने में पाप बतलाते हैं इनका मत तो वि.सं.१८१५ में भीखमस्वामी ने निकाला है ।

३९ जब आप मूर्तिपूजा अनादि बतलाते हो तब दूसरे लोग उनका खण्डन क्यों करते हैं ?

४० भला मूर्ति नहीं माननेवाले तो अन्य देवी देवताओं के यहां जाते हैं पर मूर्ति माननेवाले क्यों जाते हैं ?

४१ हमारे कई साधु तो कहते हैं कि मूर्ति नहीं मानना लौंकाशाह से चला है । तब कई कहते हैं कि हम तो महावीर की वंश परम्परा चले आते हैं इसके विषय में आपकी क्या मान्यता है ?

४२ क्या ३२ सूत्रों में मूर्तिपूजा करने का उल्लेख है ?

४३ इसमें कई सूत्रों के आपने जो नाम लिखे हैं वहां मूल पाठ में नहीं पर टीका निर्युक्ति में है वास्ते हम लोग नहीं मानते हैं ?

४४ पांच पदो में मूर्ति किस पद में हैं ?

४५ चार शरणों में मूर्ति किस शरण में हैं ?

४६ सूत्रों में अरिहंत का शरणा कहां हैं । पर मूर्ति का शरणा नहीं कहा है ?

४७ भगवान ने तो दान-शील-तप एवं भाव यह चार प्रकार का धर्म बतलाया है । मूर्तिपूजा में कौन सा धर्म है ?

४८ पूजा में तो हम धमाधम देखते हैं ?

४९ तप संयम से कर्मो का क्षय होना बतलाया है पर मूर्ति से कोन से कर्मो का क्षय होता है वहां तो उल्टे कर्म बन्धन है ?

५० यह समझ में नहीं आता हैं कि अष्टमी चतुदर्शी जैसी पर्व तिथियों में श्रावक लोग हरी वनस्पति

खाने का त्याग करते हैं जब भगवान को वे फल फूल कैसे चढा सकते हैं ?

५१ साधुओं को तो फासुक अचित आहार देने में पुण्य है पर भगवान को तो पुष्पादि सचित पदार्थ चढाया जाता है और उसमें हिंसा अवश्य होती है ?

५२ पाणी में से साध्वी को निकालना या गुरुवंदन करने में तो भगवान की आज्ञा है ने ?

५३ भगवानने कब कहा कि तुम हमारी पूजा करना ?

५४ बतलाइयें किस सूत्र मे कहा है कि मूर्ति पूजा से मोक्ष होता है ?

५५ उववाई सूत्र में साधुओं को वंदना करने का फल यावत् मोक्ष बतलाया है। जैसे कि...

१. हियाए – हित का कारण

२. सुहाए – सुख का कारण

३. रकमाए – कल्याण का कारण

४. निस्सेसाए – मोक्ष प्राप्ति का कारण

५. अनुगमिताए – भवोभव में साथ

साधु वन्दन का फल तो मोक्ष बतलाया है पर मूर्तिपूजा का फल किसी सूत्र में मोक्ष का कारण बतलाया हो तो आप भी मूल सूत्र पाठ बतलावें ?

५६ हो या न हो यदि सूत्रों में पाठ हो तो बतलाइये ?

५७ यह तो केवल फल बतलाया पर किसी श्रावक ने प्रतिमा पूजी हो तो ३२ सूत्रों का मूल पाठ बतलाओ ?

५८ द्रौपदी की पूजा हम प्रमाणिक नहीं मानते हैं ।

५९ द्रौपदी उस समय मिथ्यात्वी अवस्था में थी ।

६० : सूरियाभ तो देवता था उसने जीत आचार से प्रतिमा पूजी उसमें हम धर्म नहीं समझते हैं ?

६१ यह तो हम नहीं कह सकते है कि भगवान् का महोत्सवादि करने से भव भ्रमण बढता है ?

६२ यदि धामधूम करने में धर्म होता तो सूरियाभ देव ने नाटक करने की भगवान् से आज्ञा मांगी उस समय आज्ञा न देकर मौन क्यों रखा ?

६३ उपासक दशांग सूत्र में आनंद काम देव के व्रतों का अधिकार है पर मूर्ति का पूजन कहीं भी नहीं लिखा है ?

६४ ज्ञाता सूत्र में २० वीस बोलों का सेवन करना, तीर्थंकर गोत्र बांधना बतलाया है पर मूर्तिपूजा से तीर्थंकर गोत्रबंध नहीं कहा है ?

६५ मूर्तिपूजा में हिंसा होती है, उसे आप धर्म कर्म मानते हो ?

६६ पूजा यत्नों से नहीं की जाती है ?

६७ बस अब में आपको विशेष कष्ट देना नहीं चाहता हूं । कारण में आपके दो प्रश्नों के उत्तर में हा सब रहस्य समझ गया, पर यदि कोई मुझसे पूछले तो उसको जवाब देने के लिये मैंने आपसे इतने प्रश्न किये हैं । आपने निष्पक्ष होकर न्यायपूर्वक जो उत्तर दिया उससे मेरी अन्तरात्मा को अत्यधिक शान्ति मिली है । यह बात सत्य है कि वीतराग दशा की मूर्ति की उपासना करने से आत्मा का क्रमशः विकास होता है । मैं भी आज से मूर्ति का उपासक हूं और मूर्तिपूजा में मेरी दृढ श्रद्धा है आपको जो कष्ट दिया, तदर्थ क्षमा चाहता हूं ।

हां ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है ।

प्रश्न १ : क्या जैन सूत्रो में मूर्तिपूजा का उल्लेख है ?

उत्तर : सूत्रों में उल्लेख तो क्या, किंतु सूत्र स्वयं ही मूर्ति हैं । तद्वत् लिखने वाला मूर्ति, पढने वाला मूर्ति, समझने वाला मूर्ति है, तो सूत्रों में मूर्ति विषयक उल्लेख का तो पूछना ही क्या है ? ऐसा कोई सूत्र नहीं, जिसमें मूर्ति विषयक उल्लेख न मिलता हो । चाहे ग्यारह अंग, बत्तीस सूत्र और चौरासी आगम देखो, मूर्ति सिद्धान्त व्यापक है यदि इस विषय के पाठ देखना हों तो हमारी लिखी **प्रतिमा – छत्तीसी, गयवर विलास और सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली** नाम की पुस्तकें देखो ।

(इस पुस्तक के अन्त में भी कुछ सूत्र पाठ दिये गये हैं ।)

प्रश्न २ : सूत्रों को आप मूर्ति कैंसे कहते हैं ?

उत्तर : मूर्ति का अर्थ है, आकृति (शकल) सूत्र भी स्वर, व्यंजन वर्णो की आकृति (मूर्ति) ही तो हैं ।

प्रश्न ३ : मूर्ति को तो आप वन्दनं, पूजन करते हो पर आपको सूत्रों का वन्दन पूजन करते नहीं देखा ?

उत्तर : क्या आपने पर्युषणों के अन्दर पुस्तकजी का जुलूस नहीं देखा ? जैनं लोग पुस्तकजी का किस ठाठ से वन्दन पूजन करते हैं ।

प्रश्न ४ : हम लोग तो सूत्रों का वन्दन पूजन नहीं करते है ।

उत्तर : यही तो आपकी कृतघ्नता है कि सूत्रों को वीतराग की वाणी समझकर उनसे ज्ञान प्राप्त कर आत्मकल्याण चाहते हो और उन वाणी की वन्दन पूजन करने से इन्कार करते हो । इसी से तो आपकी ऐसी बुद्धि होती है श्री भगवती सूत्र के आदि में गणधर देवों ने '**णमो**

बंभीए लिवीए' कहकर स्थापना सूत्र (ज्ञान) को नमस्कार किया है । मूर्ति अरिहन्तों का स्थापना निक्षेप है और सूत्र अरिहंतो की वाणी की स्थापना है, एवं ये दोनों वन्दनिक तथा पूजनिक हैं ।

प्रश्न ५ : महावीर तो एक ही तीर्थंकर हुए हैं पर आपने (मूर्तिपूजकों ने) तो ग्राम ग्राम में मूर्तियां स्थापन कर अनेक महावीर कर दिये हैं ।

उत्तर : यह अनभिज्ञता का सवाल है कि महावीर एक ही हुए परन्तु भूतकाल में महावीर नाम के अनन्त तीर्थंकर हो गये हैं । इसलिये उनकी जितनी मूर्तियाँ स्थापित हों उतनी ही थोडीं है । यदि आपकी मान्यता यही है कि महावीर एक हुए है तो आपने पन्ने पन्ने पर महावीर की स्थापना कर उन्हें शिर पर क्यों लाद रखा है ? मन्दिरों में मूर्ति महावीर का स्थापना निक्षेप हैं और पन्नो पर जो 'महावीर' ये अक्षर लिखे हैं ये भी स्थापना निक्षेप हैं, इसमें कोई अंतर नहीं है । तब

स्वयं तो (अक्षर) मूर्ति को मानना और दूसरों की निन्दा करना यह कहां तक न्याय है ?

प्रश्न ६ : कोई तीर्थंकर किसी तीर्थंकर से नहीं मिलते है पर आपने तो एक ही मन्दिर में चोबीसों तीर्थंकरो को बैठा दिया।

उत्तर : हमारा मन्दिर तो बहुत लम्बा चौडा है उसमें तो चौबीसों तीर्थंकरों की स्थापना सुखपूर्वक हो सकती है । **राजप्रश्नीय सूत्र** में कहा है कि एक मन्दिर में ***'अठसयं जिणपडिअं'*** पर आप तो पांच इंच के छोटे से एक पन्ने में ही तीनों चौबीसी के तीर्थकर की स्थापना कर रखी है और उस पन्ने को पुस्तक में खुब कसकर बांध अपने सिर पर लाद कर सुखपूर्वक फिरते हैं । भला क्या इसका उत्तर आप समुचित दे सकेंगे ? या हमारे मन्दिर में चौबीसों तीर्थंकरो का होना स्वीकार करेंगे ?

प्रश्न ७ : सूत्रों में तीन चौबीसी का नाम मात्र लिखा है स्थापना कहां है ?

उत्तर : जो नाम लिखा है वही तो स्थापना हैं । जब मूर्ति स्वयं अरिहंतो की स्थापना है तो सूत्र उन अरिहंतो की वाणी की स्थापना है इसमें कोई अन्तर नहीं है ।

प्रश्न ८ : सूत्रों के पढने से ज्ञान होता है । क्यां मूर्ति के देखने से भी ज्ञान होता है ?

उत्तर : ज्ञान होना या नहीं होना आत्मा के उपादान कारण से सम्बन्ध रखता है । सूत्र और मूर्ति तो मात्र निमित्त कारण हैं, सूत्रों से एकान्त ज्ञान ही होता है तो जमाली गोशालादि ने भी यही सूत्र पढे थे, फिर उन्हें ज्ञान क्यों नहीं हुआ ? जगवल्लभाचार्य को मूर्ति के सामने केवल चैत्य-वन्दन करने ही से ज्ञान कैसे हो गया ? इसी प्रकार अनेक पशु पक्षियों व जलचर जीवों को मूर्ति के देखने मात्र से जातिस्मरणादि ज्ञान हो गये हैं, अतः नाम की अपेक्षा

स्थापना से विशेष ज्ञान हो सकता है । आप पुस्तक पढने की अपेक्षा एक नकशा सामने रखो जिससे आपको तमाम दुनियां का यथार्थ ज्ञान हो जायेगा ।

प्रश्न ९ : आप जिनप्रतिमा को जिन-सारखी कहते हो क्या यह मिथ्या नहीं है ?

उत्तर : आप ही बतलाइये यदि हम जिनप्रतिमा को जिन-सारखी नहीं कहें तो फिर क्या कहे ? उन्हे किनके सारखी कहें । क्योंकि यह आकृति सिवाय जिन के और किसी के सदृश मिलती नहीं जिससे उनकी इन्हें उपमा दें । जिनप्रतिमा को जिन-सारखी हम ही नहीं कहते है किन्तु खास सूत्रों के मूल पाठ में भी उन्हें जिन सारखी कहा है, जैसे-**जीवाभिगम** सूत्र में यह लिखा है कि ***'धूवं दाउणं जिनवराणं'*** अर्थात् धूप, दिया जिनराज को । अब आप विचार करें कि देवताओं के भवनों में जिन-प्रतिमा के सिवाय कौन से जिनराज है ? यदि हम आपके फोटु को

आपके जैसा कहें तो कौन सा अनुचित हुआ ? यदि नहीं तो फिर जिनराज की प्रतिमा को जिन सारखी कहने ही में क्या दोष है ? यदि कुछ नहीं तो फिर कहना ही चाहिये ।

प्रश्न १० : यदि मूर्ति जिन सारखी है तो उसमें कितनें अतिशय हैं ?

उत्तर : जितने अतिशय सिद्धो में हैं उतने ही मूर्ति में है, क्योंकि मूर्ति भी तो उन्हीं सिद्धों की ही है । अच्छा अब आप बतलाइयें कि भगवान की वाणी के पैंतीस गुण हैं, आपके सूत्रो में कितने गुण है ?

प्रश्न ११ : यदि जिनप्रतिमा जिनसारखी है तो फिर उस पर पशु पक्षी वीटें क्यों कर देते हैं ? उनको अर्पण किया हुआ नैवेद्य आदि पदार्थ मूषक मार्जार क्यों ले जाते है ? तथा उन्हें दुष्ट लोग हड्डियां की माला क्यों पहना देते हैं ? उनके शरीर पर से आभूषण आदि चोर

क्यों ले जाते हैं, एवं मुसलमान लोगों ने अनेक मन्दिर मूर्तियां तोड कैसे डाली ? इत्यादि ।

उत्तर : हमारे वीतराग की यही तो वीतरागिता है कि उन्हें किसी से रागद्वेष या प्रतिबन्ध का अंश मात्र नहीं है । चाहे कोई उन्हें पूजे या उनकी निंदा करें, उनका मान करें या अपमान करें, चाहे कोई द्रव्य चढा जावे या ले जावे, चाहे कोई भक्ति करे या आशातना करें । उन्हें कोई पुष्पाहार पहिना दें या कोई अस्थिमाला आकर गले में डाल दें इससे क्या ? वे तो रागद्वेष से पर हैं उन्हें न किसी से विरोध है, और न किसी से सौहार्द, वे तो समभाव हैं, देखिये-भगवान् पार्श्वनाथ को कमठ ने उपसर्ग किया और धरणेन्द्रने भगवान की भक्ति की पर प्रभु पार्श्वनाथ का तो दोनों पर समभाव ही रहा है । जैसा कि कहा है ।

'कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभोस्तुल्य मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ।।'

भगवान महावीर के कानों में गोवाले ने खीलें ठोकीं,

वैद्य ने खीलें निकाल लीं, परंतु भगवान् का दोनों पर समभाव ही रहा, जब स्वयं तीर्थंकरों का समभाव है तो उनकी मूर्तियों में तो समभाव का होना स्वाभाविक ही है। अच्छा ! अब हम थोडा सा आपसे भी पूछ लेते हैं कि जब वीतराग की वाणी के शास्त्रों में पेंतीस गुण कहे हैं तो फिर आपके सूत्रों को कीडे कैसे खा जाते हैं? तथा यवनोंने उन्हें जला कैसे दिया ? और चोर उन्हें चुराकर कैसे ले जाते हैं ? क्या इससे सूत्रों का महत्व घट जाता है ? यदि नहीं तो इसी भांति मूर्तियों का भी समझ लीजिये ।

मित्रो ! ये कुतर्कें केवल पक्षपात से पैदा हुई हैं यदि समदृष्टि से देखा जाय तब तो यही निश्चय ठहरता है कि ये मूर्तिएं और सूत्र, जीवों के कल्याण करने में निमित्त कारण मात्र हैं । इन की सेवा, भक्ति, पठन, श्रवणादि से परिणामों की शुद्धता, निर्मलता होती है । यही आत्मा का विकास है, इसलिये मूर्तियाँ और सूत्र वंदनीय एवं पूजनीय है ।

प्रश्न १२ : प्रतिमा पूजने से ही मोक्ष होती हो ता फिर तप, संयम आदि कष्ट क्रिया की क्या जरुरत है ?

उत्तर : प्रतिमा पूजन मोक्ष का कारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं है फिर भी यदि आपका यह दुराग्रह है तो स्वयं बताइये कि तुम दानशील से मोक्ष मानते हो, वह क्यों ? कारण यदि दानशील से ही तुम्हें मोक्ष प्राप्ति हो जाती हे तो फिर दीक्षा लेने का कष्ट क्यों किया जाता है ? परन्तु बन्धुओ ! यह ऐसा नहीं है-यद्यपि दानशील एवं मूर्तिपूजन ये सब मोक्ष के कारण है फिर भी जैसे-गेहूं धान्य बीज रुप गेहूं से पैदा होता है फिर भी ऋतु, जल, वायु और भूमि की अपेक्षा रखता है वैसे ही ये मूर्ति पूजन आदि भी तप, संयम आदि साधनों की साथ में आवश्यकता रखते हैं । समझे न ?

प्रश्न १३ : यदि मूर्तियां वीतराग की हैं और वीतराग तो त्यागी थे फिर उनकी मूर्तियों को भूषणादि से अलंकृत कर उन्हें भोगी क्यों, बनाया जाता है ?

उत्तर : जो सच्चे त्यागी है वे दुसरों से बनाये भोगी नहीं बन सकते, यदि बनते हों तो तीर्थंकर समवसरण में रत्नखचित सिंहासन पर विराजते हैं पीछे उनके भामण्डल (तेजोमंडल) ऊपर अशोक वृक्ष, शिर पर तीन छत्र और चारों और इंद्र चामर के फटकारे लगायें करते हैं । आकाश में धर्मचक्र एवं महेन्द्रध्वज चलता है तथा सुवर्ण कमलों पर वे सदा चलते हैं । ढ़ींचण प्रमाण पुष्पों के ढेर एवं सुगन्धित धूप का धूंआ चतुर्दिश फैलाया जाता है, कृपया कहिये, ये चिन्ह भोगियों के है या त्यागियों के ? यदि दूसरे की भक्ति से त्यागी भोगी बन जाय तो फिर वे वीतराग कैसे रहें ? बात तो यह है कि भावुकात्मा जिनमूर्ति का निमित्त लेकर वीतराग की भक्ति करते हैं इससे इनके चित्त की निर्मलता होती है और क्रमशः मोक्ष-पद की प्राप्ति भी हो सकती है ।

प्रश्न १४ : मन्दिरों में अधिष्ठायक देवों के होते हुए भी चोरियाँ क्यों होती हैं ?

उत्तर : यह तो स्थापना है पर प्रभुवीर के पास एक करोड देवता होने पर भी समवसरण में दो साधुओं को गोशाला ने कैसे जला दिया था, भला भवितव्यता भी कोई टाल सकता है ?

प्रश्न १५ : जो लोग यह कहते हैं कि 'पाछा क्यों आया मुक्ति जाय के जिनराज प्रभुजी' इसका आप क्या उत्तर देते हैं?

उत्तर : ***'पाछा इम आया, निन्हव प्रगट्या है आरे पाँचवें'*** हम लोग तो मूर्तियों को तीर्थंकरो का शास्त्रानुसार स्थापना निक्षेप मान के स्थापित करते हैं, पर ऐसा करनेवाले खुद ही मोक्षप्राप्त सिद्धों को वापिस बुलाते हैं । देखिये वे लोग हर वक्त चौवीस्तव करते हैं तो एक 'नमोत्थुणं' अरिहंतो को और दूसरा सिद्धों को देते हैं । सिद्धों के नमोत्थुणं में 'पुरिससिंहाणं' पुरुषवर पुंडरीयाणं, पुरुसवरगन्ध 'हत्थीणं' इत्यादि कहते हैं । पुरुषो में सिंह और वरगन्धहस्ती

समान तो जब ही होते हैं कि वे देहधारी हों । इस 'नमोत्थुणं' के पाठ से तो वे लोग सिद्धों को वापिस बुलाते हैं, फिर भी तुर्रा यह कि अपनी अज्ञता का दोष दूसरों पर डालना है। सज्जनों ! जरा सूत्रों के रहस्य को तो समझे ! ऐसे शब्दों से कितनी हंसी और कर्मबन्धन होता है ? हमारे सिद्ध मुक्ति पाकर वापिस नहीं आए हैं । पर मोक्ष प्राप्त सिद्धों की प्रामाणिकता इन मूर्तियों द्वारा बताई गई हैं कि जो सिद्ध मुक्त हो गए हैं उनकी ये मूर्तियाँ हैं ।

प्रश्न १६ : यदि ये मूर्तियाँ सिद्धों की हैं तो इन पर कच्चा पानी क्यों डालते हो ?

उत्तर : भगवान महावीर मुक्त हो गए, अब तुम फिर क्यां कहते हो कि अमुक दिन भगवान गर्भ में आए, भगवान का जन्म हुआ, इन्द्र मेरु पर ले जाकर हजारों कलशों से भगवान महावीर का स्नात्र महोत्सव किया इत्यादि जो आप मुंह से कहते हैं, यह क्या है ? यह भी तो प्रच्छन्नरुपेण मूर्ति-

पूजन ही को सिद्ध करता हैं, भेद केवल इतना ही है कि तुम तो मात्र वाणी से कहते हो और हम उसे साक्षात् करके दिखा देते हैं ।

प्रश्न १७ : कई लोग कहते हैं कि 'मुक्ति नहीं मिलसी प्रतिमा पूजियां, क्यों झोड मचावो ?' इसके उत्तर में आपका क्या परिहार है ।

उत्तर : टेर का उत्तर ही टेर होना चाहिए अतः हम प्रत्युत्तर में *'पूजा बिना मुक्ति न मिले क्यों कष्ट उठावों ?'* यह टेर कहते हैं।

प्रश्न १८ : प्रतिमा पूजकर कोई मुक्त हुआ है ?

उत्तर : सिद्धों में ऐसा कोई जीव नहीं, जो बिना प्रतिमा-पूजन के मोक्ष को गया हो, चाहे वे मनुष्य के भाव में या चाहे देवताओं के भाव में हो परन्तु वे मोक्षार्थ मूर्तिपूजक अवश्य हैं ।

प्रश्न १९ : जब तो जो मोक्ष का अभिलाषी (मुमुक्षु) हो उसे जरुर मूर्तिपूजन करना चाहिये ।

उत्तर : इसमें क्या सन्देह ? क्योंकि आज जो मूर्ति नहीं पूजते हैं अथवा नहीं मानतें हें, उन्हें भी यहां पर नहीं तो देवताओं में जाकर तों जरुर सर्व प्रथम मूर्तिपूजन करना पडेगा । हां ! यदि मूर्ति द्वेष के पाप के कारण उन्हें नरक या तिर्यंच योनि का नसीब हुआ हो तो भले ही वे मूर्तिपूजा से बच सकते हैं, अन्यथा पूजन जरुर करना ही होगा ।

प्रश्न २० : देवताओ में जाकर मूर्ति पूजन करना पडेगा ही, इसका आपके पास क्या प्रमाण है ?

उत्तर : देवताओं का कुल जैन है और वें उत्पन्न होते ही यह ही विचार करते हैं कि मुझे पहला क्या करना और पीछे क्या करना और पहले व पीछे क्या करने से हित-सुख-कल्याण और मोक्ष का कारण होगा इसके उत्तर में यह ही कहा है कि पहले पीछे मूर्ति का पूजन करना ही मोक्ष का

कारण है, देखो राजप्रश्नीय सूत्र और जीवाभिगम सूत्र का मूल पाठ ।

प्रश्न २१ : कई नहीं करते हैं कि 'परचो नहि पूरे पार्श्वनाथजी सब झूठी बातों ।'

उत्तर : इसके उत्तर में यही ***'परचौ पूरे हैं पार्श्वनाथजी, मुक्ति के दाता'*** ठीक हैं क्योंकि पर... का अर्थ लाभ पहुंचना है अर्थात् मनोकामना सिद्ध करना, जो भव्यात्मा प्रभु पार्श्वनाथ की सेवा पूजा भक्ति करते हैं, उन्हें पार्श्वनाथजी अवश्य परचो दिया करते हैं (उसे लाभ पहुंचाया करते हैं) उसकी मनोकामना सिद्ध करते हैं, भक्तो की प्रधान मनोकामना मोक्ष की होती है और सबसे बढकर लाभ भी यही है, यदि पार्श्वनाथ परचो नहीं देवे तो फिर उनकी माला क्यों फेरते हो ? स्तवन क्यों गाते हो ? तथा लोगस्स में हरवक्त उनका नाम क्यों लेते हो ?

प्रश्न २२ : सूत्रो में चार निक्षेप बतलाए जिस में एक भाव निक्षेप ही वन्दनीय है ।

उत्तर : यदि ऐसा ही है तो फिर नाम क्यों लेते हो ? अक्षरो में क्यों स्थापना करते हों, अरिहंत मोक्ष जाने के बाद सिद्ध होते हैं वे भी तो अरिहंतो का द्रव्य निक्षेप है, उनको नमस्कार क्यों करतें हो ? बिचारे भोले लोगों को भ्रम में डालने के लिये ही कहते हो कि एक भाव निक्षेप ही वन्दनीय है, यदि ऐसा ही है तो उपरोक्त तीन निक्षेपों को मानने की क्या जरुरत हैं, परन्तु करो क्या ? न मानों तो तुम्हारा काम ही न चले, इसी से लाचार हो तुम्हें मानना ही पडता है । शास्त्रो में कहा है कि जिसका भाव निक्षेप वन्दनीय है उसके चारों निक्षेप वन्दनीय है और जिसका भाव निक्षेप अवन्दनीय है उसके चारों निक्षेप भी अवन्दनीय है । एक आनंद श्रावक का ही उदाहरण लीजिए, उसने अरिहंतो को तो वंदनीय माना और अन्य तीर्थियों को वन्दन का त्याग किया । यदि अरिहंतों का भावनिक्षेप वन्दनीय और तीन निक्षेप

अवन्दनीय हैं तो अन्य तीर्थंकरो का भावनिक्षेप अवन्दनीय और शेष तीन निक्षेप वन्दनीय ठहरते हैं, पर ऐसा नहीं होता, देखिये....

अरिहंतो के चार निक्षेप

१. नाम निक्षेप : अरिहंतो का नाम वन्दनीय

२. स्थापना निक्षेप : अरिहंतो की मूर्ति या अरिहंत ऐसे अक्षर लिखना वन्दनीय ।

३. द्रव्य निक्षेप : भाव अरिहंतो भूत, भविष्यकाल के अरिहंत वन्दनीय ।

४. भाव निक्षेप : समवसरण स्थित अरिहंत वन्दनीय ।

अन्य तीर्थियों के चार निक्षेप

१. नाम निक्षेप : अन्य तीर्थियों का नाम निक्षेप अवन्दनीय।

२. स्थापना निक्षेप : अन्य तीर्थंकरों की मूर्ति अवन्दनीय ।

३. द्रव्य निक्षेप : भाव निक्षेप का भूत भविष्यकाल के

अन्य तीथियाँ अवन्दनीय ।

४. भाव निक्षेप : वर्तमान के अन्य तीथियाँ अवन्दनीय ।

यह सीधा न्याय है कि सतीर्थियों के जितने निक्षेप वन्दनीय है, उतने ही अन्य तीर्थियों के अवन्दनीय है अर्थात् स्व तीर्थियों के चारों निक्षेप वन्दनीय है और अन्य तीर्थियों के चारों निक्षेप अवन्दनीय है ।

प्रश्न २३ : मूर्ति जड है उसको पूजने से क्या लाभ ?

उत्तर : जड में इतनी शक्ति है कि चैतन्य को हानि लाभ पहुंचा सकता है । चित्र लिखित स्त्री जड होने पर भी चैतन्य का चित्त चंचल कर देती हैं । जड कर्म चैतन्य को शुभाऽशुभ फल देते हैं । जड भांग, चैतन्य को भान (होश) भुला देती है । जड सूत्र चैतन्य को सद्बोध कराते हैं, जड मूर्ति चैतन्य के मलिन मन को निर्मल बना देती है । मित्रो ! आजकल का जड मैस्मरेज्म और सायन्स कैसे २ चमत्कार

दिखा रहे हैं । फिर यहां जड के बारे में कोई शंका न करके केवल मूर्ति को ही जड जान उससे कुछ लाभ न मानना अपनी मन्द बुद्धि का द्योतक नहीं तो और क्या है?

प्रश्न २४ : पांच महाव्रत की पच्चीस भावना और श्रावक के १६ अतिचार बतलाये हैं । पर मूर्ति की भावना या अतिचार को कहीं भी नहीं कहा इसका कारण क्या है ?

उत्तर : दर्शन को प्रस्तुत भावना में, शत्रुंजय, गिरनार, अष्टापदादि तीर्थों की यात्रा करना आचारांग सूत्र में बतलाया है और मूर्ति के अतिचार रुप ८४ आशातना चैत्यवंदन भाष्यादि में बतलाई है, यदि मूर्तिपूजा ही इष्ट नहीं होती तो तीर्थयात्रा और ८४ आशातना क्यों बतलाते ?

प्रश्न २५ : तीन ज्ञान (मति, श्रुति और अवधिज्ञान) संयुक्त तीर्थंकर गृहवास में थे, उस समय भी किसी

व्रतधारी साधु श्रावकने वन्दन नहीं किया, तो अब जड मूर्ति को कैसे वन्दन करें ?

उत्तर : तीर्थंकरने तो जिस दिन से तीर्थंकर नामकर्म बंधा उसी दिन से वन्दनीय हैं जब तीर्थंकर गर्भ में आये थे, तब सम्यक्त्वधारी तीन ज्ञान संयुक्त शकेन्द्रने नमोत्थुणं देकर वंदन किया । ऋषभदेव भगवान के शासन के साधु, श्रावक जब चौबीसस्तव (लोगस्स) कहते थे, तब अजितादि २३ द्रव्य तीर्थंकरो को नमस्कार (वंदना) करते थे, नमोत्थुणं के अंत में पाठ है कि–

'जे अ अइया सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले ।
संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ।।'

इसमें कहा गया है कि जो तीर्थंकर हो गये हैं, और जो होनेवाले हैं और जो वर्तमान में विद्यमान हैं, इन सब को मन, वचन, काया से नमस्कार करता हूं । फिर भी आप तेरह पंथियों से तो अच्छे ही हो, तेरह पंथी भगवान को चूका बतलाते हैं, आप अवन्दनीय बतलाते हो, परंतु भगवान के

दीक्षा लेने के बाद भी किसी साधु श्रावकने उन्हें वन्दना नहीं की, तो क्या आप भी भगवान को दीक्षा की अवस्था में अवन्दनीय ही मानते हैं ? क्योंकि आपकी दृष्टि से साधु श्रावक जितना भी गुण उस समय (दीक्षाऽवस्था) में भगवान में न होगा ? मित्रों ! अज्ञानता की भी कुछ हद हुआ करती है ।

प्रश्न २६ : मूर्ति में गुण स्थान कितना पावे ?

उत्तर : जितना सिद्धों में पावें, क्योंकि मूर्ति तो सिद्धों की है । एवं जीवों के भेद योगादि समझें ।

प्रश्न २७ : श्रावक के १२ व्रत है मूर्तिपूजा किस व्रत में है ?

उत्तर : मूर्तिपूजा, मूल सम्यक्त्व में है, जिस भूमि पर व्रतरूपी महल खडा है वह भूमि समकित है । आप बतलाइये शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य १२ व्रतों में से

किस व्रत में है । यदि कहो कि यह तो सम्यक्त्व के लक्षण है तो मूर्तिपूजा भी समकित कों निर्मल करनेवाली व्रतो की माता है । मूर्तिपूजा का फल यावत् मोक्ष बतलाया है तब व्रतों का फल यावत् बारहवां देवलोक (स्वर्ग) ही बतलाया है और समकित बिना व्रतों की किमत भी नहीं है ।

जैन मूर्ति नहीं माननेवाले लोग मांस मदिरादि भक्षक, भैरु भवानी यक्षादिदेव और परिपैगम्बर आदि देवों को वन्दन पूजन कर सिर झुकाते हैं, यही उनकी अधिकता है ।

प्रश्न २८ : पत्थर की गाय की पूजा करें तो क्या वह दूध दे सकती ? यदि नहीं तो फिर पाषाणमूर्ति कैसे मोक्ष दे सकती है ?

उत्तर : हाँ ! जैसे मूर्ति मोक्ष का कारण है वैसे ही पत्थर की गाय भी दूध का कारण हो सकती है जैसे 'किसी मनुष्य ने पत्थर की गाय देखी उससे उसको असली गाय का भान जरुर हो गया कि गाय इस शकल की होती है, फिर वह

एक समय जंगल में भूखा प्यासा भटक रहा हो और उसने जंगल में एक चरती हुई गाय देखी हो वह फट उस पूर्व दृष्ट ज्ञान से उसका दूध निकाल अपनी भूख, प्यास को बुझा सकता है । क्या यह पत्थर की गाय का प्रभाव नहीं है ? मित्रों आखिर तो नकली से ही असली का ज्ञान होता है जैसे छट्ठा गुणस्थान प्रमादावस्था नकली साधु है पर आगे चलकर वहही तेरहवें गुणस्थान पहुंच सकता है ।

प्रश्न २९ : क्या पत्थर का सिंह प्राणियों को मार सकता ?

उत्तर : हां पत्थर का सिंह भी मार सकता है । इतना ही नहीं पर पत्थर का सिंह देखनेवाला अपनी जान भी बचा सकता है । यों समझियें कि यदि किसीने पत्थर के सिंह से वास्तविक सिंह का ज्ञान प्राप्त किया हो और वह फिर जंगल में चला जाय और वहां उसे असली सिंह मिल गया तो वह शीघ्र वृक्षादि पर चढकर अपने प्राण बचा सकता है, अन्यथा

नहीं बचा सकता । देखा पत्थर का प्रभाव ?

प्रश्न ३० : एक विधवा औरत अपने मृत पति का फोटु पास में रखके प्रार्थना करे कि स्वामिन् मुझे सहवास का आनंद दो, तो क्या फोटु आनंद दे सकता है ?

उत्तर : इसका उत्तर जरा विचारणीय है, जैसे विधवा अपने मृतपति का फोंटु अपने पास रखकर उससे भौतिक आनन्द की आकांक्षा रखती है परंतु उसे कोई आनन्द नहीं मिलता, कारण भौतिक आनंद देने में भौतिक देह के अस्तित्व की आवश्यकता है और वह देह इस समय है नहीं । उसका अधिष्ठाता उसका प्राण वायु और वह शरीर इस समय है नहीं फिर उसे आनंद कहां से मिले ?

अस्तु आपका तो मूर्ति से द्वेष मालूम होता है इसीसे आप ऐसा प्रश्न करते हैं । नहीं तो माला तो आप भी हमेशा फेरते हो और उससे आत्म कल्याण की भावना रखते हो, ऐसे ही विधवा भी यदि हाथ में माला ले अपने पति के नाम

को रटे तो क्या उस स्मरणमात्र से उसका पति उस विधवा की इच्छाएं पूर्ण कर सकता हैं ? कदापि नहीं तब माला लेना और फेरना भी व्यर्थ हुआ । सज्जनों ! नाम लेने में तो एक नाम विशेष ही है पर मूर्ति में नाम और स्थापन दोनों निक्षेप विद्यमान है, इसलिए नाम रटने की अपेक्षा मूर्ति की उपासना अधिक फलदायक हैं, क्योंकिं मूर्ति में स्थापना के साथ नाम भी आ जाता हैं । जैसे आप किसी को युरोप की भौगोलिक स्थिति, मुंह जबानी समझाते हो परंतु समझनेवाले के हृदय में उस वक्त युरोप का हूबहू चित्र चित्त में नहीं खिच सकेगा । जैसा आप युरोप का लिखित मानचित्र (नकशा) उसके सामने रख उसे युरोप की भौगोलिक स्थिति का परिचय करा सकेंगे । इससे सिद्ध होता है कि केवल नाम के रटने से मूर्ति का देखना और नाम का रटना विशेष लाभदायक है ।

प्रश्न ३१ : जब आप मूर्ति को पूजते हो तब मूर्ति के बनाने वाले को क्यों नहीं पूजते ?

उत्तर : आप अपने पूज्यजी को वन्दना करते हो परन्तु उनके गृहस्थावस्था के माता पिता जिन्होंने उनका शरीर गढा है उनको वन्दना क्यों नहीं करते हो ? पूज्यजी से तो उनको पैदा करनेवाले आपके मतानुसार अधिक ही होंगे ।

प्रश्न ३२ : मूर्ति सिलावट के यहां रहती है तब तक आप उसे नहीं पूजते और मन्दिर में प्रतिष्ठित होने के बाद उसे पूजते हो इसका क्या हेतु है ?

उत्तर : आप वैरागी को दीक्षा देते हैं दीक्षा लेने के पूर्व तो उसे कोई वन्दना नहीं करता और दीक्षा लेने के बाद उसी वक्त वन्दना करने लग जाते हो तो क्या दीक्षा आकाश में घूमती थी, जो एकदम वैरागी के शरीर में घुस गई कि वह वन्दनीक बन गया ?

उनको (वैरागी) तो सामायिक का पाठ सुनाया जाता हैं इससे वे वन्दनीय हो जाते है ?

इसी तरह मूर्ति की भी मंत्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा की जाती

है जिससे वह भी वन्दनीय हो जाती है ।

प्रश्न ३३ : सिलावट के घर पर रही नई मूर्ति की आप आशातना नहीं टालते और मन्दिर में आने पर उसकी आशातना टालते हो । इसका क्या कारण है ?

उत्तर : गृहस्थों के मकान पर जो लकडी का पाट पडा रहता है उस पर आप भोजन करते हैं, बैठते हैं, एवं अवसर पर जूता भी रख देतें है, परंतु जब वही पाट साधु अपने सोने के लिये ले गए हो तो आप उसकी आशातना टालते हो । यदि अनुपयोग से आशातना हो भी गई हो तो प्रायश्चित लेते हो । इसका क्या रहस्य है ? जो कारण तुम्हारे यहां है वह हमारे भी समझ लीजिये । मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा होने से उसमें दैवी गुणों का प्रादुर्भाव होता है ।

प्रश्न ३४ : पाषाण मूर्ति तो एकेन्द्रिय होती है उसकी, पंचेन्द्रिय मनुष्य पूजन करके क्या लाभ उठा

सकते हैं ?

उत्तर : ऐसा कोई मनुष्य नहीं है कि वह पत्थर की उपासना करता हो कि हे पाषाण ! मुझे संसार सागर से पार लगाईए, किन्तु वे तो मूर्ति में प्रभु गुण आरोपण कर एकाग्रचित्त से उसी प्रभु की उपासना व प्रार्थना करते हैं कि नमोत्थुणं कह कर परमात्मा के गुणों का ध्यान में स्मरण करते हैं । पर सूत्रों कि पृष्ठ तो जड हैं, आप उन जड पदार्थ से क्या ज्ञान हासिल कर सकते हैं, यह स्वतः समझ लीजिये ।

प्रश्न ३५ : मंदिर तो बारहवर्षी दुष्काल में बने हैं, अतः यह प्रवृत्ति नई है ?

उत्तर : बारह वर्षी दुष्काल कब पडा था आप को यह मालूम हैं ?

सुना जाता है कि १००० वर्ष पहले बारह वर्षी दुकाल पडा था ?

सुना हुआ ही कहते हो या स्वयं शोधखोज करके

कहते हो । महरबान ! जरा सुने और सोचे, पहला बारहवर्षी दुकाल चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रबाहुस्वामी के समय पडा था, जिसे आज २३०० वर्ष के करीब होते हैं । और दूसरा बारहवर्षीय अकाल दशपूर्वधर वज्रस्वामी के समय में पडा, इसे करीब १९०० वर्ष होत हैं । आप के मतानुसार बारहवर्षीय दुष्काल में ही मंदिर बना यह मान लिया जाय तो पूर्वधर श्रुत केवलियों के शासन में मंदिर बना और उसका अनुकरण २३०० वर्ष तक धर्मधुरंधर आचार्योंने किया और करते हैं । तो फिर लोंकाशाह को कितना ज्ञान था कि उन्होंने मंदिर का खण्डन किया और उन्हें पूर्व आचार्यों की अज्ञानी मान लिया । मंदिरो की प्राचीनता सूत्रो में तो हैं ही पर आज इतिहास के अन्वेषण से मंदिरो के अस्तित्व की महावीर के समय में विद्यमान बतातें है । देखिये (१) उडीसा प्रांत की हस्तीगुफा का शिलालेख, जिसमें महामेघवाहन चक्रवर्ती राजा खारवेल, जिसने 'अपने पूर्वजों के समय मगध के राजा नन्द ऋषभदेव की जो मूर्ति ले गये थे उसे

वापिस लाइ और आचार्य सुस्थितसूरि से प्रतिष्ठा कराई । यह मूर्ति राजा श्रेणिकने बनाई थी । (२) विशाला नगरी की खुदाई से जो मूर्तियों के खण्डहर निकलें है, उन्हें शिल्पशास्त्रियों ने २२०० वर्ष प्राचीन स्वीकार किये हैं । (३) मथुरा के कंकाली टीला को अंग्रेजो ने खुदवाया, उसमें जैन, बौद्ध और हिन्दु मंदिर मूर्तियों के प्रचुरता से भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं, उन पर शिलाक्षरन्यास भी अंकित हैं । जिनका समय विक्रम पूर्व दो तीन शताब्दी का है । (४) आबु के पास मुण्डस्थल नाम का तीर्थ है वहां का शिलालेख प्रगट करता है कि वहां महावीर अपना छद्मस्थपने के सातवें वर्ष पधारे थे । उसी समय वहां पर राजा नन्दीवर्धन ने मंदिर बनाया । (५) कच्छ भद्रेश्वर में वीरात् २३ वर्ष बाद का मंदिर है, जिसका जीर्णोद्धार दानवीर जगडुशाह ने कराया । (६) ओशिया और कोंरटा के मंदिर वीरात् ७० वर्ष बाद के हैं जो आज भी विद्यमान है । क्या इस ऐतिहासिक युग में कोई व्यक्ति कह सकता है कि मंदिर बनाने की प्रारम्भिकता को केवल

१००० वर्ष ही हुए है ? कदापि नहीं, यदि आपको इनसे भी विशेष प्रमाण देखने की इच्छा हो तो, देखो, मेरी लिखी 'मूर्ति पूजा की इतिहास' नामक पुस्तक ।

प्रश्न ३६ : यह भी सुना जाता है कि मंदिर मार्गियों ने मंदिरों में धामधूम और आरम्भ बहुत बढा दिया, इस हालत में हम लोगों ने मंदिरों को बिलकुल छोड दिया ?

उत्तर : शिर पर यदि बाल बढ जाय तो क्या वालों के बदले शिर को ही उडा देना योग्य है ? यदि नहीं तो फिर मंदिरों मे आरम्भ बढ गया तो आरम्भ और धाम धूम नहीं करने का उपदेश देना था, पर मंदिर मूर्तियों का ही इनके बदले निषेध करना तो बालों के बदले शिर कटाना ही है । जैसे जब शीतकाल आता है तब सभी जन विशेष वस्त्र धारण करते हैं । इस प्रकार जब आडम्बर का काल आया तब धाम धूम (विशेष भक्ति) बढ गए तो क्या बुरा हुआ ? फिर भी अनुचित था तो इसे उपदेशों द्वारा दूर करना था, न कि मंदिरों

को छोडना । धामधूम का जमाने में केवल मंदिर पर ही नहीं परंतु सब वस्तु पर समान भाव से प्रभाव डाला हैं । आप स्वयं सोचें कि आरम्भ से डरनेवाले लोगों के पूज्यजी आदि स्वयं बडे बडे शहरों में चातुर्मास करते हैं, उनके दर्शनार्थी हजारों भावुक आते हैं । उनके लिये चन्दा कर चौका खोला जाता है । रसोईये प्रायः विधर्मी ही होते हैं, नीलण बूलण और कीडो वाले छाणे (कण्डे) और लकडियों जलाते है । पर्युषणों में खास धर्माराधन के दिनों में बडी बडी भटियें जला जाती हैं । दो दो तीन तीन मण चावल पकाते है । जिनका गरम गरम (अत्युष्ण जल भूमि पर डाला जाता है जिससे असंख्य प्राणी मरते है, बताइयें क्या आपका यही परम पुनित अहिंसा धर्म है ? हमारे यहां मंदिरो में तो एकाध कलश ठण्डा जल और एकाध धूपबत्ती काम में ली जाती हैं । उसे आरम्भ २ के नाम से पुकारते हो और घर का पता ही नहीं । यह अनूठा न्याय आपको किसने सिखाया ? साधु हंमेशा गुप्त तप और पारणा करते हैं पर आज तो अहिंसा के पैगम्बर

तपस्या के आरम्भ में ही पत्रों द्वारा जाहिर करते हैं कि अमुक स्वामीजी इतने उपवास किये, अमुक दिन पारणा होगा इस सुअवसर पर सकुटुम्ब पधार कर शासन शोभा बढावें । इस पारणा पर सेंकडों हजारों भावुक एकत्र हो, बडा आरम्भ समारम्भ कर स्वामीजी का माल लूंट जाते हैं । इसका नाम धाम धूम है या भक्ति की ओट में आरम्भ है ? ऐसे अनेक कार्य है कि मूर्तिपूजकों से कई गुना धाम धूम और आरम्भ करते हैं जरा आंख उठा के देखो आप पर भी जमाने ने कैसा प्रभाव डाला है ?

प्रश्न ३७ : यदि मंदिर, मूर्ति, शास्त्र एवं इतिहास प्रमाणों से सिद्ध है फिर स्थानकवासी खण्डन क्यों करते हैं ? क्या इतने बडे समुदाय में कोई आत्मार्थी नहीं है कि जो उत्सूत्र भाषण कर वज्रपाप का भागी बनता है ?

उत्तर : यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है कि किसी समुदाय में आत्मार्थी है ही नहीं पर इस सवाल का

उत्तर आप ही दीजिये कि दया दान में धर्म व पुण्य, शास्त्र, इतिहास और प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध हैं पर तेरह पन्थि लोग इसमें पाप होने की प्ररुपणा करते हैं क्या इतने बडे समुदाय में कोई भी आत्मार्थी नहीं है कि खुले मैदान में उत्सूत्र प्ररूपते हैं जैसे आप तेरह पन्थियों को समझते हैं वैसे ही हम आपको समझते हैं आपने मूर्ति नहीं मानी, तेरहपन्थियों ने दया दान नहीं माना, पर उत्सूत्र रूपी पाप के भागी दोनों समान ही हैं और स्थानकवासी व तेरहपन्थियों में जो आत्मार्थी हैं वे शास्त्रों द्वारा सत्य धर्म की शोध करके असत्य का त्याग कर सत्य को स्वीकार कर ही लेते हैं । ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान है कि स्थानकवासी तेरहपन्थी सेंकडो साधु संवेगी दीक्षा धारण कर मूर्ति उपासक बन गये ।

प्रश्न ३८ : स्थानकवासी और तेरहपन्थियों को आपने समान कैसे कह दिया कारण तेरहपन्थियों का मत तो निर्दय एवं निकृष्ट है कि वे जीव बचाने में या

उनके साधुओं के सिवाय किसी को भी दान देने में पाप बतलाते हैं इनका मत तो वि.सं. १८१५ में भीखमस्वामी ने निकाला है ।

उत्तर : जैसे तेरहपन्थियोंने दया दान में पाप बतलाया, वैसे स्थानकवासियोंने शास्त्रोक्त मूर्तिपूजा को पाप बतलाया, जैसे तेरहपन्थी समाज को वि.सं.१८१५ में भीखमजीने निकाला, वैसे ही स्थानकवासी मत को भी वि.सं. १७०८ में लवजीस्वामीने निकाला । बतलाइये उत्सूत्र प्ररुपणा में स्थानकवासी और तेरहपन्थियों में क्या असमानता है ? हां ! दया दान के विषय में हम और आप (स्थानकवासी) एक ही हैं ।

प्रश्न ३९ : जब आप मूर्तिपूजा अनादि बतलाते हो तब दूसरे लोग उनका खण्डन क्यों करते हैं ?

उत्तर : जो विद्वान शास्त्रज्ञ हैं, वे न तो मूर्ति का खण्डन करते थे और न करते हैं । बल्कि जिन मूर्तिपूजक आचार्योंने

बहुत से राजा, महाराजा व क्षत्रियादि अजैनों को जैन ओसवालादि बनाया उनका महान उपकार समझते हैं और जो अल्पज्ञ या जैनशास्त्रों के अज्ञाता हैं वे अपनी नामवरी के लिये या भद्रिक जनता को अपने जाल में फंसाए रखने को यदि मूर्ति का खण्डन करते हैं तो उनका समाज पर क्या प्रभाव पडता है ? कुछ नहीं उनके कहने मात्र से मूर्ति माननेवालों पर तो क्या पर नहीं माननेवालों पर भी असर नहीं होता है । वे अपने ग्राम के सिवाय बाहिर तीर्थों पर जाते हैं वहां निशंक सेवा पूजा करते हैं और उनको बडा भारी आनंद भी आता है ।

फिर भी उन लोगो के खण्डन से हमको कोई नुकसान नहीं पर एक किस्म से लाभ ही हुआ है । ज्यों ज्यों वे कुयुक्तियों और असभ्यता पूर्वक हलके शब्दों में मूर्ति की निन्दा करते हैं त्यों त्यों मूर्तिपूजकों की मूर्ति पर श्रद्धा दृढ एवं मजबूत होती जा रही है । इतना ही नहीं पर किसी जमाने से सदोपदेश के अभाव से भद्रिक लोग मूर्तिपूजा से दूर रहते थे

वे भी अब समझ बूझकर मूर्ति उपासक बन रहे हैं जैसे आचार्य विजयान्दसूरि (आत्मारामजी) का जोधपुर में चातुर्मास हुआ उस समय मूर्तिपूजक केवल १०० घर ही थे पर आज ६००-७०० घर मूर्तिपूजकों के विद्यमान हैं । इसी प्रकार तीवरी गांव में एक घर था आज ५० घर हैं । पीपाड में नाम मात्र के मूर्तिपूजक समझे जाते थे आज बराबर का समुदाय बन गया, बीलाडा में एक घर था आज ४० घर हैं, खारिया में संवेगी साधुओं को पाव पानी भी नहीं मिलता था । आज बराबरी का समुदाय दृष्टिगोचर हो रहा है इसी भांति जैतारण का भी वर्तमान है । रुण में एक भी घर नहीं था आज सबका सब ग्राम मूर्तिपूजक है, खजवाना में एक घर था आज ५० घरों में २५ घर मूर्ति पूजनेवाले हैं कुचेरा में ६० घर हैं और मेवाड मालवादि में भी छोटे-बडे ग्रामों में मंदिर मूर्तियों की सेवा पूजा करनेवाले सर्वत्र पाये जाते है जहां मंदिर नहीं थे वहां मंदिर बन गये जहां मंदिर जीर्ण हो गये थे वहां उनका जीर्णोद्धार हो गया । जो लोग जैन सामाजिक

प्रतिक्रमणादि विधि से सर्वथा अज्ञात थे वे भी अपनी विधि विधान से सब क्रिया करने में तत्पर है । मेहरबानों यह आपकी खण्डन प्रवृत्ति से ही जागृति हुई है ।

आत्मबंधुओ ! जमाना बुद्धिवाद का है जनता, स्वयं अनुभव से समझने लग गई कि हमारे पूर्वजों के बने बनायें मंदिर हमारे कल्याण के कारण हैं, वहां जाने पर परमेश्वर का नाम याद आता है । ध्यान स्थित शान्त मूर्ति देखकर प्रभु का स्मरण हो आता है जिससे हमारी चित्तवृत्ति निर्मल होती हैं वहां कुछ द्रव्य चढाने से पुण्य बढता है पुण्य से सर्व प्रकार से सुखी हो सुखपूर्वक मोक्ष मार्ग साध सकते हैं । अब तो लोग अपने पैरों पर खडे है । कई अज्ञसाधु अपने व्याख्यान में जैनमंदिर मूर्तियों के खण्डन विषयक तथा मंदिर न जाने का उपदेश करते हैं तो समझदार गृहस्थ लोग कह उठते हैं कि महाराज पहिले भैरु भवानी पीर पैगम्बर कि जहां मांस मदिरादि का बलिदान होता है वो त्याग करवाईये । आपको झुक झुक के वन्दन करनेवालियों के गलों में रहे मिथ्यात्वी

देवों के फूलों को छुडवाइयें । चौरी, व्यभिचार, विश्वासघात, धोखावाजी आदि जो महान् कर्मबन्ध के हेतु है इनको छुडवाइये । क्या पूर्वोक्त अनर्थ के मूल कार्यों से भी जैन मंदिर में जाकर नमस्कार व नमोत्थुणं देने में अधिक पाप है कि आप पूर्वोक्त अधर्म कार्यों को उपेक्षा कर जैनमंदिर मूर्तियां एवं तीर्थयात्रा का त्याग करवाते हो । महात्मन् ! जैन मंदिर मूर्तियों की सेवा भक्ति छोडने से ही हम लोग अन्य देवी देवताओं को मानना व पूजना सीखे हैं । वरन् नहीं तो गुजरातादि के जैन लोग सिवाय जैन मंदिरों के कहीं भी नहीं जाते हैं । उपदेशकों से आज कई अर्सों से मंदिर नहीं मानने का उपदेश मिलता है पर हमारे पर इस उपदेश का थोडा ही असर नहीं होता है कारण हम जैन हैं हमारा जैन मंदिरों बिना काम नहीं चलता हैं । जैसे-जन्मे तो मन्दिर, ब्याहैं तो मन्दिर, मरें तो मंदिर, अट्ठाई आदि तप करें तो मंदिर, आपद समय अधिष्ठायक देव को प्रसन्न करें तो मंदिर, संघपूजा करें तो मंदिर, संघ पूजा देवें तो मंदिर, दीपमालिकादि पर्व दिनों

में मंदिर, पर्युषणों में मंदिर, तीर्थयात्रा में मंदिर, इत्यादि मंदिर बिना हमारा काम नहीं चलता हैं । भला वैष्णवों के रेवाडी, मुसलमानों के ताजिया तो क्या जैनो के खासाजी (वरघोडा) होना अनुचित हैं ? नहीं अवश्य होना ही चाहिये । यदि जैनों का वरघोडा न हो तो बतलाईये हम और हमारे बाल-बच्चे किस महोत्सव में जावें ? महाराज ! जिन लोगों ने जैनों को जैनमंदिर छुडवाया है उन्होने इतना मिथ्यात्व बढाया है कि आज जैनियों के घरो में जितने व्रत वरतोलिये होते हैं वे सब मिथ्यात्वियों के ही हैं । हिन्दु देवी देवता को तो क्या ? पर मुस्लमानों के पीर पैगम्बर और मसजिदादि की मान्यता पूजन से भी जैन बच नहीं सके हैं क्या यह दुख की बात नहीं है ? क्या यह आपकी कृपा (!) का फल नहीं है । जहां संगठन और एकता का आंदोलन हो रहा हो वहां आप हम को किस कोटि में रखना चाहते हैं ?

प्रश्न ४० : भला मूर्ति नहीं माननेवाले तो अन्य देवी

देवताओं के यहां जाते हैं पर मूर्ति माननेवाले क्यों जाते हैं ?

उत्तर : जैन लोग जैन देवी देवताओं के सिवाय किसी अन्य देव देवियों की मान्यता व पूजा नहीं करते थे विक्रम संवत १७८५ तक मारवाड के तमाम जैनोंका एक ही मूर्ति मानने का धर्म था । वहां तक जैन अपनी प्रतिज्ञा पर अडग थे । बाद मूर्ति मानने, नहीं मानने का भेद पडा । कई अज्ञ लोगों ने जिनमंदिरो को छोडा, तो उस हालत में वे अन्य देव देवियों को जाकर शिर झूकाने लगे । जातिव्यवहार एक (सामिल) होने से मूर्ति माननेवालों की लडकियां, मूर्ति नहीं माननेवालो को ब्याही और मूर्ति नहीं माननेवालों की बेटियां माननेवालों को दी । इस हालत में जैनियों के घरो में आई हुई स्थानकवासियों की बेटियां अपने पीहर के संस्कारो के कारण अन्य देव देवियो को मानने लगीं इससे यह प्रवृत्ति उभय पक्ष में चल पडी तथापि जो पक्के जैन है वे तो आज भी अपनी प्रतिज्ञा पर डटे हुये हैंजो अपवाद हैं वह भी

स्थानकवासियों की प्रवृत्ति का ही फल हैं तेरहपन्थि तो इन से भी नीचे गिरे हुए है ।

प्रश्न ४१ : हमारे कई साधु तो कहते हैं कि मूर्ति नहीं मानना लौंकाशाह से चला है । तब कई कहते हैं कि हम तो महावीर की वंश परम्परा चले आते हैं इसके विषय में आपकी क्या मान्यता है ?

उत्तर : जैनमूर्ति नहीं मानना यह लौंकाशाहसे चला यह वास्तव में ठीक है ही इस मान्यता का हाल ही में स्थानकवासी मुनि शोभागचन्दजीने जैन प्रकाश पत्र में धर्मप्राण लौंकाशाह नाम की लेखमाला में भली भांति सिद्ध कर दिया है कि भगवान महावीर के बाद २००० वर्षो से जैन मूर्ति नहीं माननेवाला सबसे पहले लौंकाशाह ही हुआ पर जो लोग कहते हैं कि हम महावीर की वंश परम्परा से चले आते हैं और कल्पित नामों की पटावलियां भी बनाई हैं, पर वे इस ऐतिहासिक युग में सब मिथ्या ठहरती हैं कारण महावीर बाद

२०० वर्षों में केवली, चतुर्दश पूर्वधर श्री श्रुतकेवली सेंकडों धर्म धुरंधर महान प्रभाविक आचार्य हुए वे सब मूर्ति उपासक ही थे, यदि उनके समय में मूर्ति नहीं मनानेवाले होते तो वे मूर्ति का विरोध करते पर एसे साहित्य की गन्ध तक भी नहीं पाई जाती । जैसे दिगम्बर के श्वेताम्बर अलग हुए तो उसी समय उनके खण्डन मण्डन के ग्रन्थ बन गये पर मूर्ति मानने नहीं मानने के विषय में वि.सं.१५३१ पहिले कोई भी चर्चा नहीं पाई जाती इसी से यह कहना ठीक है कि जैनमूर्ति के उत्थापक सबसे पहिले लौंकाशाह ही हैं । यदि वीर परम्परा से आने का कोई दावा करते हों तो लौंकाशाह के पूर्व का प्रमाण बतलाना चाहिये, कारण जैनाचार्योंने हजारों लाखों मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा की हजारों लाखों ग्रंथो की अनेक राजा महाराजाओं को जैन धर्ममें दीक्षित किया, ओसवालादि जातिएं बनाई इत्यादि । भला ! एकाथ प्रमाण तो वे लोग ही बतलावें कि लौंकाशाह पूर्व हमारें साधुओं ने अमुक ग्रंथ बनाया या उपदेश देकर अमुक स्थानक बनाया

या किसी अजैनों को जैन बनाया । कारण जिस समय जैनाचार्य पूर्वधर थे उस समय मूर्ति नहीं माननेवाले सब के सब अज्ञानी तो नहीं होंगे कि उन्होंने कोई ग्रंथ व ढाल, चौपाई, कवित्ता, छन्द का एक पद भी नहीं रचा ? बन्धुओं ! अब जमाना यह नहीं है कि चार दीवारों के बीच भोली भाली बहिनों के सामने कल्पित बात कर आप अपने को सच समझें । आज जमाना तो अपनी मान्यता को प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा मैदान में सत्य बतलाने का है । क्या कोई व्यक्ति यह बतला सकता है कि लौंकाशाह पूर्व इस संसार में जैन मूर्ति नहीं माननेवाला कोई व्यक्ति था ? कदापि नहीं ।

प्रश्न ४२ : क्या ३२ सूत्रों में मूर्तिपूजा करने का उल्लेख है ?

उत्तर : यह तो हमने पहले से ही कह दिया था कि ऐसा कोई सूत्र नहीं है कि जिसमें मूर्ति का उल्लेख न हो । कदाचित् आपको किसी ने भ्रम में डाल दिया हो कि ३२

सूत्रों में मूर्ति का बयान नहीं है तो सुन लीजिये ।

१. श्री आचारांग सूत्र दूसरा श्रुतस्कन्ध पन्द्रहवें अध्ययन में सम्यक्त्व की प्रशस्त भावना में शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा करना लिखा है (भद्रबाहु स्वामीकृत निर्युक्ति)

२. श्री सूत्रकृतांग सूत्र दूसरा श्रुतस्कन्ध छट्ठे अध्ययन में अभयकुमार ने आर्द्रकुमार के लिये जिनप्रतिमा भेजी जिसके दर्शन से उसको जाति स्मरण ज्ञान हुआ । (शी.टी)

३. श्री स्थानांग सूत्र चतुर्थ स्थानक में नन्दीश्वर द्वीप में ५२ मंदिरो का अधिकार है ।

४. श्री समवायांग सूत्र के सतरहवें समवाय में जंघाचारण विद्याचरण मुनियों के यात्रा वर्णन का उल्लेख हैं ।

५. श्री भगवती सूत्र शतक ३ उ. १ के चमरेन्द्र के अधिकार में मूर्ति का शरण कहा है ।

६. श्री ज्ञातसूत्र अध्याय ८में श्री अरिहंतों की भक्ति करने से तीर्थंकर गोत्र बन्धता हैं तथा अध्याय १६ में द्रौपदी

महासतीने १७ भेद से पूजा की है ।

७. श्री उपासक दशांग सूत्र आनन्दाधिकार में जैन मूर्ति का उल्लेख हैं ।

८. श्री अन्तगड और अनुत्तरोवाई सूत्र में द्वारिकादि नगरीयों के अधिकार में औत्पातिक सूत्र सदृश जैनमंदिरो का उल्लेख है ।

९. प्रश्न व्याकरण सूत्र तीसरे संवरद्वार में जिनप्रतिमा की वेयावच्च (रक्षण) कर्म निर्जरा के हेतु करना बतलाया है ।

११. विपाकसूत्र में सुबाहु आदि ने जिन प्रतिमा पूजी है ।

१२. औत्पातिक सूत्र में मुह्लले २ जैन मंदिर में तथा अंबड श्रावक नें प्रतिमा का वन्दन करने की प्रतिज्ञा ली थी ।

१३. राजप्रश्नीय सूत्र में सूरियाभ देव ने सत्रह प्रकार से पूजा की है ।

१४. जीवा जीवाभिगम सूत्र में विजयदेवने जिनप्रतिमा

पूजी है ।

१५. प्रज्ञापना सूत्र में ठवणा सच्च कहा है ।

१६. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में २६३ शाश्वत पर्वतों पर ६१ मंदिर तथा जम्बुकदेव ने प्रतिमा पूजी । आदीश्वर प्रभु के निर्वाण के बाद उनकी चिता पर इन्द्र महाराजने रत्नों के स्थूभ बनाये ।

१७. चन्द्र-प्रज्ञप्ति सूत्र में चन्द्र विमान में जिन प्रतिमा ।

१८. सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में सूर्य विमान में जिन प्रतिमा ।

१९-२३. पांच निरयावलिका सूत्र नगरादि अधिकार में जिन प्रतिमा ।

२४. व्यवहार सूत्र उद्देशा पहला आलोचनाधिकार में जिन प्रतिमा ।

२५. दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, राजगृह नगराधिकारे जिन प्रतिमा ।

२६. निशीथ सूत्र जिनप्रतिमा के सामने प्रायश्चित लेना

कहा ।

२७. बृहत्कल्प सूत्र नागरियों के अधिकार में जिन चैत्य है।

२८. उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन १० अष्टापद के मंदिर, अध्याय १८वां उदाइराजा को राणी प्रभावती के गृहमंदिर का अधिकार, अध्ययन २६ में चैत्य वंदन का फल यावत् मोक्ष बतलाया है ।

२९. दशवैकालिक सूत्र जिनप्रतिमा के दर्शन से शय्यंभव भट्ट को प्रतिबोध हुआ ।

३०. नन्दीसूत्र में विशालनगरी में जिनचैत्य महाप्रभाविक कहा है ।

३१. अनुयोगद्वार सूत्र में चार निक्षेप का अधिकार में स्थापना निक्षेप में अरिहंतोकी मूर्ति, अरिहंतो की स्थापना कही है ।

३२. आवश्यक सूत्र में अरिहंत चेइआणं वा तथा कीत्तिय वंदिय महिया जिसमें कीत्तिय वंदिय को भावपूजा

और महिमा द्रव्यपूजा कहा है ।

इन ३२ सूत्रों के अलावा भी सूत्रों में तथा पूर्वधराचार्यों के ग्रंथो में जिनप्रतिमा का विस्तृत वर्णन है पर आप लोग ३२ सूत्र ही मानते है इसलिये यहां ३२ सूत्रों में ही जिन प्रतिमा का संक्षिप्त से उल्लेख किया है ।

प्रश्न ४३ : इसमें कई सूत्रों के आपने जो नाम लिखे हैं वहां मूल पाठ में नहीं पर टीका निर्युक्ति में है वास्ते हम लोग नहीं मानते हैं ?

उत्तर : यह ही तो आपकी अज्ञानता है कि स्थविरों के रचे उपांगादि सूत्रों को मानना और पूर्वधरों की रची निर्युक्ति टीका नहीं मानना । भला पहले दूसरे सूत्रों के अलावा ३० सूत्रों के मूल पाठ में मूर्तिपूजा का उल्लेख हैं वे तो आपको मान्य हैं ? यदि है तो उसको तो मान लीजिये कि आपका कल्याण हो ।

प्रश्न ४४ : पांच पदो में मूर्ति किस पद में हैं ?

उत्तर : अरिहंतो को मूर्ति अरिहंत पद में और सिद्धों की मूर्ति सिद्ध पद मैं हैं ।

प्रश्न ४५ : चार शरणों में मूर्ति किस शरण में हैं ?

उत्तर : मूर्ति अरिहंत और सिद्धों के शरण में हैं ।

प्रश्न ४६ : सूत्रों में अरिहंत का शरणा कहां हैं । पर मूर्ति का शरणा नहीं कहा है ?

उत्तर : कहा तो है पर आपको नहीं दीखता हैं । भगवती सूत्र श. ३ उ.१ में अरिहंत, अरिहंतो की मूर्ति और भावितात्मा साधु का शरणा लेना कहा है और आशातना के अधिकार में पुनः अरिहंत और अनगार एवं दो ही कही इससे सिद्ध हुआ कि जो अरिहंतो की मूर्ति की आशातना है वह ही अरिहंतो की आशातना है । आप भी भैरु की स्थापना को पीठ देकर नहीं बैठते हो कारण उसमें भैरु की आशातना

समझते हो ।

प्रश्न ४७ : भगवान ने तो दान–शील–तप एवं भाव यह चार प्रकार का धर्म बतलाया है । मूर्तिपूजा में कौन सा धर्म है ?

उत्तर : मूर्तिपूजा में पूर्वोक्त चारों प्रकार का धर्म है जैसे–

१. पूजा में अक्षतादि द्रव्य अर्पण किये जाते हैं यह शुभक्षेत्र में दान हुआ ।

२. पूजा के समय इन्द्रियों का दमन विषय विकार की शान्ति यह शीलधर्म ।

३. पूजा में नवकारशी पौरसी के प्रत्याख्यान यह तपधर्म ।

४.पूजा में वीतरागदेव की भावना गुणस्मरण यह भावधर्म । एवं पूजा में चारों प्रकार का धर्म होता है ।

प्रश्न ४८ : पूजा में तो हम धमाधम देखते हैं ?

उत्तर : कोई अज्ञानी सामायिक करके या दयापाल के धमाधम करता हो तो क्या सामायिक व दया दोषित और त्यागने योग्य है या धमाधम करनेवाले का अज्ञान है ? दया पालने में एकाद व्यक्ति को धमाधम करता देख शुद्ध भावों से दया पालनेंवालों को ही दोषित ठहराना क्या अन्याय नहीं है ?

प्रश्न ४९ : तप संयम से कर्मो का क्षय होना बतलाया है पर मूर्ति से कोन से कर्मो का क्षय होता है वहां तो उल्टे कर्म बन्धन है ?

उत्तर : मूर्तिपूजा तप संयम से रहित नहीं है । जिसे तप संयम से कर्मो का क्षय होता है वैसे ही मूर्तिपूजा से भी कर्मो का नाश होता है । जरा पक्षपात के चश्में उतार कर देखिये-मूर्तिपूजा में किस किस क्रिया से कौन से कौन से कर्मो का क्षय होता है ।

१. चैत्यवन्दनादि भगवान के गुणस्तुति करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय ।

२. भगवान् के दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म का नाश

३. प्राण-भूत-जीव-सत्व की करुणा से असातावेदनीय का क्षय ।

४. अरिहंतो के गुणों का या सिद्धों के गुणों का स्मरण करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और मोहनीय कर्म का क्षय होता है।

५. प्रभुपूजा में तल्लीन और शुभाध्यवसाय से उसी भव में मोक्ष प्राप्ति होती है यदि ऐसा न हो तो शुभगति का आयुष्य बन्ध कर क्रमशः (भवान्तर) मोक्ष को प्राप्ति अवश्य होती है ।

६. मूर्तिपूजा में अरिहन्तादि का नाम लेने से अशुभ नाम कर्म का नाश ।

७. अरिहंतादि का वन्दन या पूजन करने से नीच

गौत्रकर्म की क्षय ।

८. मूर्तिपूजा में शक्ति का सदुपयोग और द्रव्यादि का अर्पण करना अन्तराय कर्म को दूर कर देता है ।

महेरबान ! परमात्मा की पूजा करने से क्रमशः आठ कर्मो की देश व सर्व से निर्जरा होती है मूर्तिपूजा का आनंद तो जो लोग पूर्ण भाव भक्ति और श्रद्धापूर्वक करते हैं वे ही जानते हैं जिनके सामने आज ४५० वर्षों से विरोध चल रहा हैं । अनेक कुयुक्तिएं लगाई जा रही हैं पर जिनका आत्मा जिनपूजा में रंगा गया है उनका एक प्रदेश भी चलायमान नहीं होता है । समझे न ।

प्रश्न ५० : यह समझ में नहीं आता हैं कि अष्टमी चतुदर्शी जैसी पर्व तिथियों में श्रावक लोग हरी वनस्पति खाने का त्याग करते हैं जब भगवान को वे फल फूल कैसे चढा सकते हैं ?

उत्तर : यह तो आपके समक्ष में आ सकता है कि

अष्टमी चतुर्दशी के उपवास (खाने का त्याग) करनेवाले घर पर आये हुए साधुओं को भिक्षा दे सकते हैं और उनको पुण्य भी होता है । जब आप खाने का त्याग करने पर भी दूसरों को खिलाने में पुण्य समझतें हैं तो श्रावकों की पुष्पादि से पूजा करने में लाभ क्यों नहीं है ?

प्रश्न ५१ : साधुओं को तो फासुक अचित आहार देने में पुण्य है पर भगवान को तो पुष्पादि सचित पदार्थ चढाया जाता है और उसमें हिंसा अवश्य होती है ?

उत्तर : यह तो आपके दिल में किसम का भ्रम डाल दिया हैं । जहां जहां हिंसा का पाठ पढा दिया है पर इसका मतलब आपको नहीं समझाया है । हिंसा तीन प्रकार की होती है । (१) अनुबन्ध हिंसा, (२) हेतु हिंसा (३) स्वरुप हिंसा है । इसका मतलब यह है कि हिंसा नहीं करने पर भी मिथ्यात्व सेवन करना उत्सूत्र भाषण करना इत्यादि वीतरागाज्ञा विराधक जैसे जमालीं प्रमुख, यह अनुबन्ध

हिंसा है । (२) गृहस्थ लोग गृहकार्य में हिंसा करते हैं वह हेतु हिंसा है । (३) जिनाज्ञा सहित धर्मक्रिया करने में जो हिंसा होती है उसे स्वरुप हिंसा कहते हैं । जैसे नदी के पाणी में एक साध्वी बह रही हैं । साधु उसे देखके पाणी के अन्दर जाकर उस साध्वी को निकाल लावे इसमें यद्यपि अनन्त जीवों की हिंसा होती है पर वह स्वरुप हिंसा होने से उसका फल कटु नहीं वह शुभ ही लगता है ।

इसी प्रकार गुरुवन्दन, देवपूजा, स्वधर्मी भाइयों की भक्ति आदि धर्मकृत्य करते समय छःकाया से किसी भी जीवों की विराधना हो उसको स्वरुप हिंसा कहते हैं ।

प्रश्न ५२ : पाणी में से साध्वी को निकालना या गुरुवंदन करने में तो भगवान की आज्ञा है ने ?

उत्तर : तो मूर्तिपूजा करना कौन सी हमारे घर की बात हैं वहां भी तो भगवान् की ही आज्ञा है ।

प्रश्न ५३ : भगवानने कब कहा कि तुम हमारी पूजा करना ?

उत्तर : साधुओंने कब कहा कि तुम हमको वंदन करना । साधुओं को वन्दन करना तो सूत्रो में कहा हैं ?

प्रश्न ५४ : बतलाइयें किस सूत्र मे कहा है कि मूर्ति पूजा से मोक्ष होता है ?

उत्तर : आप भी बतलाइये कि साधुओं को वन्दन करने से मोक्ष की प्राप्ति का किस सूत्र में प्रतिपादन किया है ।

प्रश्न ५५ : उववाई सूत्र में साधुओं को वंदना करने का फल यावत् मोक्ष बतलाया है । जैसे कि...

१. हियाए – हित का कारण

२. सुहाए – सुख का कारण

३. रकमाए – कल्याण का कारण

४. निस्सेसाए – मोक्ष प्राप्ति का कारण

५. अनुगमिताए – भवोभव में साथ

साधु वन्दन का फल तो मोक्ष बतलाया है पर मूर्तिपूजा का फल किसी सूत्र में मोक्ष का कारण बतलाया हो तो आप भी मूल सूत्र पाठ बतलावें ?

उत्तर : सूत्र पाठ तो हम बतला ही देंगे पर आप जरा हृदय में विचार तो करें कि साधु को वंदन करना मोक्ष का कारण है तब परमेश्वर की मूर्ति पूजा में तो नमोत्थुणादि पाठों से तीर्थंकरों को वंदन किया जाता है । क्या साधुओं को वन्दन जितना ही लाभ तीर्थंकरो के वंदन पूजन में नहीं है ? धन्य है आपकी बुद्धि को ।

प्रश्न ५६ : हो या न हो यदि सूत्रों में पाठ हो तो बतलाइये ?

उत्तर : सूत्र श्री रायप्पसेणी में मूर्तिपूजा का फल इस प्रकार बतलाया हैं कि–

१. हियाए – हित का कारण

२. सुहाए – सुख का कारण

३. खमाए – कल्याण का कारण

४. निस्सेसाए – मोक्ष का कारण

५. अनुगमिताए – भवोभव में साथ

इसी प्रकार आचारांग सूत्र में संयम पालने का फल भी पूर्वोक्त पांचो पाठ से यावत् मोक्ष प्राप्त होना बतलाया है । इस पर साधारण बुद्धिवाला भी विचार कर सकता है कि वन्दन पूजन और संयम का फल यावत् मोक्ष होना सूत्रों में बतलाया है, जिसमें वंदन और संयम को मानना और पूजा को नहीं मानना सिवाय अभिनिवेश के और क्या हो सकता है ।

प्रश्न ५७ : यह तो केवल फल बतलाया पर किसी श्रावक ने प्रतिमा पूजी हो तो ३२ सूत्रों का मूल पाठ बतलाओ ?

उत्तर : ज्ञाता सूत्र के १६वें अध्ययन में महासती द्रौपदीजी ने सत्तरह प्रकार से पूजा की ऐसा मूल पाठ हैं ।

प्रश्न ५८ : द्रौपदी की पूजा हम प्रमाणिक नहीं मानते हैं ।

उत्तर : क्यां कारण ?

प्रश्न ५९ : द्रौपदी उस समय मिथ्यात्वी अवस्था में थी ।

उत्तर : खेर इस चर्चा को रहने दीजिये परन्तु द्रौपदी को आज करीब ८७००० वर्ष हुए । द्रौपदी के समय जैनमंदिर और जिनप्रतिमा तो विद्यमान थीं और वे मंदिर मूर्तियाँ जैनियोंने अपने आत्म कल्याणार्थ ही बनाई इससे सिद्ध हुआ कि जैनों में मूर्ति का मानना प्राचीन समय से ही चला आया है । द्रौपदी के अधिकार में सूरियाभ देव का उदाहरण दिया है और राज प्रश्नीय सूत्र में सूरियाभदेवने विस्तारपूर्वक पूजा की है ।

प्रश्न ६० : सूरियाभ तो देवता था उसने जीत

आचार से प्रतिमा पूजी उसमें हम धर्म नहीं समझते हैं ?

उत्तर : जिसमें केवली गणधर धर्म समझे और आप कहते हो कि हम धर्म नहीं समझे तो आप पर आधार ही क्या कि आप धर्म नहीं समझे इससे कोई भी धर्म नहीं समझे । पर मैं पूछता हूं कि सूरयाभ देव में गुणस्थान कौन सा है ?

सम्यग्दृष्टि देवताओं में चौथा गुण स्थान है ।

केवली में कौन सा गुणस्थान ?

तेरहवां, चौदहवां गुणस्थान ।

चौथा गुणस्थान और तेरहवां गुणस्थान की श्रद्धा एक है या भिन्न भिन्न ?

श्रद्धा तो एक ही है ।

जब चौथा गुणस्थान वाला प्रभुपूजा कर धर्म माने तब तेरहवां गुणस्थान वाला भी धर्म माने फिर आप कहते हो कि नहीं मानते क्या ये उत्सूत्र और अधर्म नहीं है? हम पूछते हैं कि इन्द्रों ने भगवान का मेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव किया हजारों कलश पाणी ढौला सूरियाभादि देवताओ ने

पूजा की इससे हुआ हो तो वे सब एकावतारी हुए हैं । वे भव और पाप कहां पर भोग लिया । यदि भव घटिया एवं पुण्य बढा हो तो आपका कहना मिथ्या हुआ ।

प्रश्न ६१ : यह तो हम नहीं कह सकते है कि भगवान् का महोत्सवादि करने से भव भ्रमण बढता है ?

उत्तर : फिर तो निःशंक सिद्ध हुआ कि प्रभुपूजा पक्षालादि स्नात्र करने से भव घटते हैं और क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न ६२ : यदि धामधूम करने में धर्म होता तो सूरियाभ देव ने नाटक करने की भगवान् से आज्ञा मांगी उस समय आज्ञा न देकर मौन क्यों रखा ?

उत्तर : नाटक करने में यदि पाप ही होता तो भगवान् ने मनाई क्यों नहीं की इससे यह निश्चय होता है कि आज्ञा नहीं दी यह तो भाषा समिति का रक्षण हैं पर इन्कार भी तो

नहीं किया । कारण इससे देवताओं के भक्ति का भंग भी था । वास्तव में सूत्र में भक्तिपूर्वक का पाठ होने से इसमें भक्तिधर्म का एक अंग है । इसलिए भगवान् ने मौन रखा, पर मौन स्वीकृति ही समझना चाहिए । यह तो आप सोचिये कि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों के नियम तप संयम तो उदय है नहीं और वे तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जन कर सकते हैं तो इसका कारण सिवाय परमेश्वर की भक्ति के और क्या हो सकता है ?

प्रश्न ६३ : उपासक दशांग सूत्र में आनंद काम देव के व्रतों का अधिकार है पर मूर्ति का पूजन कहीं भी नहीं लिखा है ?

उत्तर : लिखा तो है परंतु आपको दिखता नहीं । आनंदने भगवान वीर के सामने प्रतिज्ञा की है कि आज पीछे में अन्य तीर्थो और उनकी प्रतिमा तथा जिस प्रतिमा को अन्य तीर्थी ग्रहण कर अपना देव मान लिया हो तो उस प्रतिमा को भी मैं नमस्कार नहीं करुंगा । इससे सिद्ध है कि

आनंदादि श्रावकों ने जिनप्रतिमा की वंदन, पूजन, मोक्ष का कारण समझ के ही किया था और औपपातिक सूत्र में अंबड श्रावक जोर देकर कहता है कि आज पीछे मुझे अरिहंत और अरिहंतों कि प्रतिमा का वंदन करना ही कल्पता है ।

प्रश्न ६४ : ज्ञाता सूत्र में २० वीस बोलों का सेवन करना, तीर्थंकर गोत्र बांधना बतलाया है पर मूर्तिपूजा से तीर्थंकर गोत्रबंध नहीं कहा है ?

उत्तर : कहा तो है पर आपको समझाने वाला कोई नहीं मिला । ज्ञाता सूत्र के २० बोलों मे पहिला बोल अरिहंतो की भक्ति और दूसरा बोल सिद्धओं की भक्ति करने सें, तीर्थंकर नामकर्मोपार्जन करना स्पष्ट लिखा है । और यही भक्ति मंदिरो में मूर्तियों द्वारा की जाती है । महाराजा श्रेणिक अरिहंतो की भक्ति के निमित्त हमेशा १०८ सोने के जौ (यव) बनाके मूर्ति के सामने स्वस्तिक किया करता था और भक्ति में तल्लिन रहने के कारण ही उसने तीर्थंकर गोत्र बांधा । कारण

दूसरे तप, संयम, व्रत तो उदय ही नहीं हुए थे । यदि कोई कहे कि श्रेणिक ने जीवदया पाली उससे तीर्थंकर गोत्र बंधा, पर यह बात गलत है, कारण जीवदया से साता वेदनीयकर्म का बंध होना भगवती सूत्र श.८ उ. ५ में बतलाया है । इसलिए श्रेणिक ने अरिहंतो एवं सिद्धों की भक्ति करके ही तीर्थंकर गोत्रोपार्जन किया था ।

प्रश्न ६५ : मूर्तिपूजा में हिंसा होती है, उसे आप धर्म कर्म मानते हो ?

उत्तर : सिद्धांतों में मूर्तिपूजा की जो विधि बताई है, उसी विधि से भक्त जन पूजा करते हैं । इसमें जल चन्दनादि द्रव्यों को देख के ही आप हिंसा हिंसा की रट लगाते हो तो यह आपकी भूल है । यह तो पांचवे गुणस्थान की क्रिया है । पर छट्ठे से तेरहवें गुणस्थान तक भी ऐसी क्रिया नहीं है कि जिसमें जीवहिंसा न हो । खुद केवली हलन चलन की क्रिया करते हैं, उनमें भी तो जीवहिंसा अवश्य होती हैं, इसी

कारण से उनके दो समय का वेदनीयकर्म का बंधन होता है । यदि साधु श्रावक को क्रिया में हिंसा होती है । नहीं तो वे समय समय पर सात कर्म क्यों बांधते हैं । इसका तो जरा विचार करो । जैसे पूजा की विधि में आप हिंसा मानते हो तो आपके गुरुवंदन में भी हिंसा क्यों नहिं मानते हों । उसमें भी तो असंख्य वायुकाय के जीव मरते हैं । साधु व्याख्यान देते समय हाथ उंचा नीचा करे, उसमें भी अगणित वायुकाय के जीव मरते हैं । इसी तरह आंख का एक वाल चलता है तो उस में भी अनेक वायुकाय के जीव मरते हैं । यदि देने का परिणाम शुभ होता है इससे उस हिंसा का फल नहीं होता, तो हमारी मूर्ति-पूजा से फिर कौन सा अशुभ परिणाम का फल होता है, जो सारा पाप इसी के सिर मढा जाय । महाशय ! जरा समदर्शी बनो ताकि हमारे आपके परस्पर नाहक का कोई मतभेद न रहे ।

प्रश्न ६६ : पूजा यत्नों से नहीं की जाती है ?

उत्तर : इस बात को हम भी स्वीकार करते हैं कि गुरु वंदनादि प्रत्येक क्रिया यत्नो से सोपयोग करनी चाहिये । पर अयतना देखकर उसे एकदम छोड ही नहीं देना चाहिए । जैसे श्रावक को सामायिक ३२ दोष वर्ज से करना कहा है । यदि किसी ने ३० दोष टाले, किसी ने २० दोष टाले, इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि एक दोष भी न टालने से सामायिक को ही छोड देना चाहिए । इसी प्रकार कई देश, काल ऐसे ही होते हैं कि अनिच्छया जानबूझ के दोष का सेवन करना पडता है । जैसै साधुओं को पेशाब, टट्टी ग्राम नगर में नहीं परठाना, ऐसा शास्त्रों में आदेश है, पर वे देशकाल को देख, जानबूझकर इस दोष का सेवन करते हैं । ऐसे ऐसे एक नहीं पर अनेक उदाहरण विद्यमान है।

प्रश्न ६७ : बस अब में आपको विशेष कष्ट देना नहीं चाहता हूं । कारण में आपके दो प्रश्नों के उत्तर में हा सब रहस्य समझ गया, पर यदि कोई मुझसे पूछले तो

उसको जवाब देने के लिये मैंने आपसे इतने प्रश्न किये हैं । आपने निष्पक्ष होकर न्यायपूर्वक जो उत्तर दिया उससे मेरी अन्तरात्मा को अत्यधिक शान्ति मिली है । यह बात सत्य है कि वीतराग दशा की मूर्ति की उपासना करने से आत्मा का क्रमशः विकास होता है । मैं भी आज से मूर्ति का उपासक हूं और मूर्तिपूजा में मेरी दृढ श्रद्धा है आपको जो कष्ट दिया, तदर्थ क्षमा चाहता हूं ।

उपसंहार

उत्तर : मूर्तिपूजा में दृढ श्रद्धालु होना, और उसका उपासक बनना यह आपकी कर्तव्यशीलता, भवभय भीरुता और सत्य को स्वीकार करने की सद्‌बुद्धि है । एवं यह आपका जनोचित कार्य प्रशंसनीय भी है । फिर भी आपको जपा यह बतला देना चाहता हूं कि जैन मंदिर मानने में जैनियों को कितना लाभ हैं ? इसे भी एकाग्र ध्यान से समझें ।

१. गृहस्थों को अनर्थ से द्रव्य प्राप्त होता है और वह

अनर्थ में ही व्यय होता है । अर्थात् आय व्यय दोनों कर्म बन्धन के कारण हैं । इस हालत में वह द्रव्य यदि मंदिर बनाने में लगाया जाय तो सुख एवं कल्याण का कारण होता है । क्योंकि एक मनुष्य के बनाये हुए मंदिर से हजारों लाखों मनुष्य कल्याण प्राप्त करते हैं । जैसे आबु आदि मंदिरों का लाभ अनेक विदेशी तक भी लेते हैं ।

२. हमेशा मंदिर जाकर पूजा करनेवाला अन्याय, पाप और अधिकृत्य करने से डरता रहता है । कारण उसके संस्कार ही वेसे हो जाते हैं ।

३. मंदिर जाने का नियम है तो वह मनुष्य प्रतिदिन थोडा बहुत समय निकाल वहां जा अवश्य प्रभु के गुणों का गान करता है और स्वान्तःकरण को शुद्ध बनाता है ।

४. हंमेशा मंदिर जानेवाले के घर से थोडा बहुत द्रव्य शुभ क्षेत्र में अवश्य जाता हैं, जिससे शुभ कर्मो का संचय होता है ।

५. मंदिर जाकर पूजा करनेवालों का चित्त निर्मल और

शरीर आरोग्य रहता है, इससे उसके तप, तेज श्रौण प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है ।

६. मंदिर की भावना होगी तो वे नये नये तीर्थों के दर्शन और यात्रा करने को भी अवश्य जायेंगे । जिन दिन तीर्थयात्रा निमित्त घर से रवाना होते हैं उस दिन से घर में प्रपंच छूट जाता हैं । और ब्रह्मचर्य व्रत पालन के साथ ही साथ यथाशक्ति तपश्चर्या या दान आदि भी करता हैं, साथ ही परम निवृत्ति प्राप्त कर ध्यान भी करता हैं ।

७. आज मुट्ठीभर जैनजाति को भारत या भारत के बाहिर जो कुछ प्रतिष्ठा शेष हैं वह इसके विशालकाय, समृद्धि-सम्पन्न मंदिर एवं पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थो से ही है ।

८. हमारे पूर्वजों का इतिहास, और गौरव इन मंदिरो से ही हमें मालूम होता है ।

९. यदि किसी प्रान्त में कोई उपदेशक नहीं पहुंच सके वहां भी केवल मंदिरो के रहने से धर्म अवशेष रह सकता है । नितान्त नष्ट नहीं होता ।

१०. आत्मकल्याण में मंदिर मूर्ति मुख्य साधन है । यथारुचि सेवा पूजा करना जैनों का कर्तव्य हैं । चाहे द्रव्यपूजा करें एवं भावपूजा पर पूज्य पुरुषों की पूजा अवश्य करें ।

११. जहां तक जैन-समाज मंदिर मूर्तियों का भाव भक्ति से उपासक था वहां तक आपस में प्रेम, स्नेह, ऐक्यता, संघ सत्ता और जाति संगठन तथा मान प्रतिष्ठा, तन, मन एवं धन से समृद्ध था ।

१२. आज एक पक्ष तो जिन तीर्थंकरो का सायं प्रातः नाम लेता है, उन्हीं की बनी मूर्तियों की भरपेट निन्दा करता है, और दूसरा पक्ष उनकी मूर्ति की पूजा करता है परंतु पूर्ण आशातना नहीं टालने से आज इस स्थिति में पहुंच रहा है ।

१३. आज इतिहास में जो जैनियों का गौरव उपलब्ध होता है उसका एक मात्र कारण उनके मंदिरो के निर्माण एवं उदारता ही है । मोक्ष का साधन समझ असंख्य द्रव्य इस कार्य में व्यय कर भारत के रमणीय पहाडों और विशाल दुर्गो

में जैन मंदिरो की प्रतिष्ठा कराई ।

१५. जैन मंदिर मूर्तियों की सेवा पूजा करनेवाले बीमार अवस्थामें यदि मंदिर नहीं भी जा सकता तो भी उनका परिणाम यह ही रहेगा कि आज में भगवान का दर्शन नहीं कर सका यदि ऐसी हालत में उसका देहान्त भी हो जाय तो उसकी गति अवश्य शुभ होती है । देखा मंदिरो का प्रभाव ।

अन्त में श्रीमती शासनदेवी से हमारी यही नम्र प्रार्थना है कि वे हम सबको सद्बुद्धि दे, जिससे पूर्व समय के तुल्य ही हम सब संगठित हो, परम प्रेम के साथ शासन सेवा करने में भाग्यशाली बनें ।

शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !!!

श्री शान्तिनाथ भगवान का स्तवन

शान्ति जिनेश्वर साहिब वन्दो, अनुभव रसनो कन्दोरे ।
मुखने मटके लोचन अटके, मोह्या सुरनर वृन्दो रे ॥
शांति ॥१॥

आम्बे मंजरी कोयल टहुके, जलद घटा जिम मोरारे ।
तेम जिनवर ने निरखी हरखुं, बलि जिम चंद चकोरा रे ॥
शान्ति ॥२॥

जिनपडिमा श्री जिनवर सारखी, सूत्र घणा छे राखी रे ।

सुरनर मुनिवर वन्दन पूजा, करता शिव अभिलाषी रे ॥
शान्ति ॥३॥

रायपसेणीमां पडिमा पूजा, सूर्याभ समकित धारी रे ।
जीवाभिगमे पडिमा पूजी, विजयदेव अधिकारी रे ।
शान्ति ॥४।

जिनवर बिंब विना नवि वन्दुं, आणंदजी इम बोले रे ।
सातमे अंगे समकित मूले, अवर वहीं तस तोले रे ॥
शान्ति ॥५॥

ज्ञातासूत्रमां द्रौपदी पूजा, करती शिवसुख मांगे रे ।
राय सिद्धारथ पडिमा पूजी, कल्पसूत्रमां रागे रे ॥
शान्ति ॥६॥

विद्याचारण मुनिवर वन्दी, पडिमा पंचम अंगेरे ।
जंघाचारण वीशमें शतके, जिनपडिमा मन रंगे रे ॥
शान्ति ॥७॥

आर्यसुहस्तिसूरि उपदेशे, साचो सम्प्रति राय रे ।
सवा क्रोड जिन बिम्ब भराव्या, धन धन तेहनी माय रे ॥
शान्ति ॥८॥

मोकली प्रतिमा अभयकुमारे, देखी आर्द्रकुमारे रे ।
जाति स्मरणे समकित पामी, वरिया शिववधु नार रे ॥
शान्ति ॥९॥

इत्यादिक बहुपाठ कह्या छे, सूत्रमांहे सुखकारी रे ।
सूत्र तणो एक वर्ण उत्थापे, ते कह्या बहुल संसारी रे ॥
शान्ति ॥१०॥

ते माटे जिन आणाधारी, कुमति कदाग्रह वारी रे ।
भक्ति तणा फल उत्तराध्ययने, बोधिबीज सुखकारी रे ॥
शान्ति ॥११॥

एक भवे दोय पदवी पाम्या, सोलमा श्री जिनराया रे ।
मुज मन मंदिरीये पधरावुं, धवल मंगल गाउं रे ॥
शान्ति ॥१२॥

जिन उत्तम पद रुप अनुपम, कीर्ति कमलानी शाला रे ।
जीव विजय कहे प्रभुजीनी भक्ति, करता मंगल माला रे ॥
शान्ति ॥१३॥